

DAMAGE BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182519

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

10. ^H83.1

Accession No. GH 639

C43C

21 गीतों में 31 गीतों की
21 गीतों की पहली बार

This book should be returned on or before the date
marked below.

चग़ताई की कहानियाँ

दूसरा भाग

हार्यरू पूर्ण शिष्ट कहानियों का सुन्दर संकलन]

लेखक

स्वर्गीय मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई

बी० ए०, एल-एल बी०



प्रकाशक

आत्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

द्वितीय बार]

मार्च १९४५

[मूल्य १।)

प्रकाशक

ब्राह्मू केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर— छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज प्रयाग ।



मुद्र ६

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग ।

विषय-सूचो

विषय		पृष्ठ
१—अँघेरा	...	१
२—अँगूठी की मुर्सिबत	...	३७
३—हीरे की बुन्दे	...	७८
४—पट्टी	...	६२
५—यह किसकी तसवीर है	...	१०४
६—खो गया	...	१२२
७—क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?...		१४२



चगताई की कहानियाँ

दूसरा भाग

अँधेरा

अँधेरा कैसा मधुर और जादू भरा शब्द है, जो फौरन ही वास्तविकता का कठोरता को दूर करके मनुष्य को विचार और भावनाओं का दुनिया में ले जाता है। वहाँ... जहाँ प्रेम और प्यार की होश उड़ा देने वाली बातें अँधेरे के निस्तब्ध और सुखप्रद वातावरण में चारों ओर छाया की तरह हिलती-डोलती नजर आती हैं।

लेकिन बुज्जदिलों और कवियों का भला हो, जिन्होंने खामख्वाह अँधेरे को बदनाम कर रखा है। वे यह नहीं देखते कि प्रेम और मुहब्बत का रहस्य ही अँधेरा है। वह कैसे? मैं आपको बताये देता हूँ।

पहला अँधेरा

तब का जिक्र है कि हमारी नई-नई शादी हुई थी, और वानम (मेरी स्त्री) का दो-एक बार से अधिक अपने मैके जाना न हुआ था। उस समय एक अजीब दिक्कत का सामना

करना पड़ा। बात दरमल यह है कि जब नई-नई शादी होती है, तो लड़के और लड़की वाले दोनों एक क्रिस्म की हिमाकत में फँस जाते हैं। लड़केवाले कहते हैं कि जब तक लड़की के घर से सचमुच कोई लेने को न आ जाय, तब तक उसे मैके न जाने देना चाहिए। अतः हमारे यहाँ भी यही हुआ। अगर कभी हमने इरादा किया कि लाओ हम उसे मैके भेज आये, तो फौरन ही अम्माजान ने खौफजदा होकर कहा—“नहीं ! लो और सुनो ! वहाँ से कोई लेने के लिए आवे भी तो।”

अब जनाब, इधर तो यह मामला और उधर यानी हमारी ससुराल का यह हाल कि खानम की अम्माजान एक से एक ‘जुड़ंगी’ रिश्तेदार लेने के लिए भेजतीं। वहाँ से विदा के लिए आदमी क्या आ रहे हैं, बस, यही मालूम हो रहा है कि हम बैठे ताश खेल रहे हैं, और हो रहा है शाहकाट...तरह-तरह की बाजी आ रही है...कभी पान का बादशाह आ रहा है, तो कभी चिड़ी का बादशाह। खुदा की पनाह ! एक साहब आये थे, उन्होंने मफलर को इस जोर से कसकर दाढ़ी बाँधने का काम लिया था कि उस पर जो सिलवटें पड़ीं वे कभी न गईं। खानम से जो पूछा, तो उसने बहाना कर दिया कि उसने खुद माथे पर बाँधा था ! दूसरी बार एक और साहब आये, तो डंड करने में कुरसी तोड़ गये। जाहिर है, इस तरह के भलेमानस सफर में किस-किस तरह खानम का नातका न बन्द करते होंगे। थर्ड क्लास के जनाने डिब्बे में ठूँसकर ये लोग बेखबर हो जाते हैं, और इधर कोई ढंग का स्टेशन आया नहीं कि पहुँचे भाँकने से मना करने को। दही-बड़ वे न खरीदने दें, चाय या बर्फ वे न पीने दें ! किस्सा मुख्तसर यह कि इसी तरह से जांगड़ुओं के साथ खानम को सफर करना

पड़ा था। यहाँ तक नौबत आई कि आखिरी बार जो खानम इसी तरह के ईंट के बादशाह के साथ गई, तो हुआ उसके मिर में दर्द, और वह हज़रत इस बात पर लगे खका होने।

नतीजा जाहिर है। मैंने तै कर लिया कि अगर अब जाने का मौक़ा हुआ, तो मैं खुद जाकर पहुँचा आऊँगा।

X

X

X

दोपहर का वक्त था, जब हम ससुराल पहुँचे। गर्मी के दिन थे। जीवन में यह तीसरी ससुराल-यात्रा थी, क्योंकि हमें लेने जाने की इजाज़त न थी। नहा-धोकर शानदार ग्वाना खाया। उसके बाद हम खानम के कमरे में पहुँचे।

एक उम्दा मसहरी बिछी हुई थी। पास में एक आराम कुरसी रखी थी। हम मसहरी पर लेट गये, और नाजू ने पंखा खींचना शुरू किया। लेटे ही थे कि खानम आई और मुझे सोने की सलाह देकर चलने लगी।

मैंने उससे कहा—“चारों तरफ के दरवाज़े बन्द कर दो।” उसने दरवाज़े बन्द कर दिये, भित्तमिलियाँ चढ़ा दीं और कमरे में एक खुशगवार अंधेरा छा गया। बिल्कुल अंधेरा घुप हो गया। नाजू बोली कि यह तो बिल्कुल अंधेरा हो गया। भित्तमिली के महीन सूराख से रोशनी कि एक जादू-भरी किरण निकलकर खानम के चेहरे पर पड़ी। मुझे मालूम हुआ कि खानम का दिलचस्प चेहरा है कि पारा तड़प रहा है। खानम जो हिली, तो रोशनी का भाला आँखों में लगा। उसने आँख बचाकर और मुसकराकर कहा—“नाजू पंखा खींचती रहेगी, तुम सोओ पड़कर।”

मैंने कहा—“पर्दे भी खींच दो।” खानम ने पर्दे खींच दिये, और नन्हें-नन्हें सूराखों से रोशनी की नरम-नरम किरणों

का आना बन्द हो गया। खानम ने दरवाजे का पट आधा खोला, कमरे में एक दम से उजेला हो गया; मगर फौरन ही खानम ने बाहर से दरवाजा उसी तरह बन्द करके अँधेरा कर दिया। मैं आँखें बन्द करके पड़ रहा। पंखा हिलने की मीठी-मीठी सुरीली आवाज आ रही थी। मैं सो गया।

X

X

X

मैं सोकर उस वक्त उठा, जब यह समय में नहीं आता कि सुबह का तड़का है, या शाम का झुटपुटा। जान पड़ता है कि अकल खराब हो गई है।

कमरे में बदस्तूर खामोशी थी। पंखा भी बदस्तूर चल रहा था। यह ससुराल था। कुछ घर तो था नहीं, जो टाँग खींचकर जगा दिये जाते। बराबर के दरवाजे का एक पट खुला हुआ था; लेकिन चूँकि पर्दे पड़े थे, और शाम हो चली थी, इसलिए अँधेरा भी बदस्तूर था। मैंने सर उठाकर देखा, तो एकाएक पास में बरामदे से खानम की मीठी आवाज किसी और आवाज में उलझती हुई, यानी बातों में मशगूल—सुनाई दी। मैंने कान लगाकर सुना।

“यह दिन-भर नाजू तेरे दूल्हा के साथ कमरे में बन्द रही?”—किन्हीं बड़ी बीबी ने कहा।

“अच्छ । ” बड़ी बीबी ने ताने से कहा - “लड़की तू दीवानी हुई है?”

मैं जगह से उठकर दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ! नाजू को इशारा किया कि उसी तरह पंखा खींचती रहे। अब मैंने भाँककर देखा। एक अदद बड़ी बीबी खानम के पास बैठी अपने ऊपर इस तरह पंखा झल रही थी कि हर बार उनकी नाक बाल-बाल बच जाती थी।

खानम ने चेहरे को आश्चर्यपूर्ण बनाकर कहा “क्यों नानी, क्या हुआ ?” (यह बड़ी बी दरअसल पड़ोसिन थीं)

“क्या हुआ !” बड़ी बी ने पंखा रोककर, खानम की तरफ घूरकर, बड़ी तेजी से दो-तीन बार अपनी ठोड़ी से नाक की फुनक छुई, और बोलीं—“कुछ हुआ ही नहीं ? खैर..... नाजू को ससुराल ले गई थी ना ?”

खानम बोली—“जी हाँ ।”

“यह क्यों ?”—बड़ी बी ने पलंग पर पंखा मारकर पूछा ।

खानम ने कहा—“काम करने के लिए । अपना आदमी...”

खानम का इतना कहना था कि बड़ी बी ने पान को इस कल्ले से उस कल्ले में किया, चेहरे पर भूचाल के चिह्न प्रकट किये, पंखा पलंग पर पटककर खानम की बाँह पकड़कर मँभोड़ी और एक खामोश लहजे में कहा—“अरी कम्बख्त, सर पकड़कर रोयेगी · देख लीजिये, यह नाजू एक दिन तेरा ही चूँडा मूँडेगी · वह तो गजब की पुतली है · · · देखती नहीं है तू · · उठते-बैठते थिरक जाती है · उसका बाल-बाल फड़कता है · · है ना आखिर को मीरासिन ।”

सहसा यह शब्द सुनकर मुझे नाजू की तरफ देखना पड़ा, यह देखने को कि गजब की पुतली कैसी होती है । उसने फौरन ही नज़र नीची कर ली ।

उधर खानन को देखा, बड़ी बी का कहना उसे बुरा लगा । क्यों ? क्या यह मेरी सच्ची मुहब्बत का अनादर नहीं था ? वह बोली—“खुदा के लिए आप कैसी बातें करती हैं ?”

“कैसी बातें करती हूँ ।”

खानम बोली—“(मतलब मुझसे है) खुदा न करे ऐसे हों । फिर नाजू · · सूरत न शकल, भाड़ में से निकल ।”

बड़ी बी बोलों, लेकिन कुछ तेज होकर,—“लड़की, मेरे बात धूप में सफेद हुए हैं ? साँस का बच्चा होता है खसम । माँ पर भरोसा करना ठीक नहीं । चुट से काट लेगा, जो भरोसा करोगी । तू भला किस गिनती में है । सचमुच की खूबसूरतों और परियों को छोड़कर चहेतो ने चुड़ैलों को घर से डाल लिया है । रह गई सूरत-शकल, सो नाजू की उठती जवानी है, वहीदन से तो लाख गुना अच्छी है, जिसने इस्लामी के मियाँ को उल्लू बना दिया । जरा तू होश की दवा कर । तू नाजू की आँखें नहीं देखती है, जहर भरा है ।”

मैंने फौरन कनखियों से नाजू को देखा—उसकी जहरीली आँखों को । इतने में मास साहब की आवाज आई, और मुझे पूछा, तो मैं दबे-पाँव लपककर पलंग पर लेट गया । नाजू नाचो गरदन किये पंखा खींच रही थी । मेरी नजर उस पर पड़ गई । यद्यपि अंधेरा था, मगर मैंने देखा—यह देखा कि नाजू की उठती जवानी है ! मुझे अब पता चला ! उसके खूबसूरत, मगर चौड़े दहाने को देखा, जो इस कान से उस कान तक चला गया था । मोटे-मोटे हाँठ जवानी के गुलदस्ते थे । नाक अलबत्ता नहीं दिवाई दी, क्योंकि दिन-दहाड़े रोशनी में उसका देख लेना कबूतर की नजर का काम था । रह गई आँखें, सो अंधेरे में उनकी एक चमक फिर देखी । जहर का छलकता हुआ प्याला था !

“अव्वल नम्बर की चुड़ैल है यह,”—मैंने दिन में कहा—“आई है हमारी खानम का चूँड़ा मूँड़ने । बहुत देखी है ऐसी उठती जवानी की चुड़ैल और जहरीली आँखोंवाली खूबसूरत लड़कियाँ ।”

इतने में खानम कमरे में दाखिल हुई । बोली—ग़ज़ब

खुदा का, सोये चले जाते हो ।” उसने मुड़कर दरवाज़ा खोल दिया । मैंने अपनी जीवन-संगिनी के प्रसन्न चेहरे को देखा, वह फूल-सा खिला हुआ था ।

×

×

×

दूसरे रोज़ ही मैं वापस आया । पन्द्रह-बीस दिन बाद खानम का खत आया कि जी घबराता है । यहाँ से बुलाने की कोई तरकीब निकालो । यहाँ सिवा इसके क्या तरकीब हो सकती थी कि लेट गये लम्बे-लम्बे बनकर । बहुत-सा पानी पी-पीकर क़ै कर दी, और रात-भर गुल मचाया । दूसरे दिन पिताजी ने तार दिलवाया और एक साहब खानम को लेकर आ पहुँचे ।

मैं नहीं कह सकता कि मेरा क्या हाल था ! खानम का ताँगा कमरे के बाहर, जिसमें मैं बीमार बना पड़ा था, आकर रुका । उसके बूट की मीठी आवाज़ सुनाई दी; मगर सवाल यह था कि नाजू भी आई या नहीं । पलक मारते नाजू और नाजू की मालकिन सामने थीं । मैंने लेटे-ही-लेटे हाथ उठाया । खानम ने जोश से मुसकराते हुए उसे दबाया । मेरे माथे पर हाथ फेरा । वह नाजू को साथ लाई थी, इस वजह से मेरे दिल में मुहब्बत का मीठा-मीठा दर्द होने लगा । अगर नाजू को न लाती, तो मेरे दिल को बड़ा सदमा होता । तब मैं यही समझता कि खानम ने मेरी मुहब्बत की कदर न की, और मुझे साँप समझा । मैं खुश और बेहद खुश था कि मेरी जीवन-संगिनी को मुझ पर भरोसा है । संक्षेप में यह कि मैं अपनी प्रसन्नता शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता । मेरी बीवी मुहब्बत के इम्तहान में कामयाब निकली ।

दूसरा अंधेरा

बदाकिस्मत हैं वे अद्भुत, जो अपनी मीठी-मीठी बीबियाँ से सर के बाल बनवाते हैं, या सर में तेल डलवाते हैं ।

शाम का झुटपुटा, दिसम्बर का महीना, जाड़ों की शाम, हवा में खुनकी थी । बाहर बरामदे के सामने मैं कुरसी पर बैठा था । उठकर भातर जाने को ही था कि खानम ने पीछे से आकर मेरे बालों में अपनी नर्म-नर्म लचकदार अँगुलियों से कंवा किया । फिर के बाल कुरद कर कहा—“बुदा की पनाह, तुम्हारे सर में कितनी खुशकी है !”

मैंने लापरवाही से उठते हुए कहा—“रहने दो ।”

मगर खानम ने कहा—“मैं अभी-अभी तेल डालूँगी ।” कहकर मुझे रोका । मुझे सिर में तेल डालने से नफरत है । मैंने इनकार किया; मगर उसके आग्रह के आगे ! नतीजा यह हुआ कि खानम ने मुझे कमरे में ला बिठाया । मैं कुरसी पर बैठ गया और पलक मारते; मेरे सिर पर तेल मला जाने लगा ।

पत्नी से सिर में तेल डलवाते समय कोई देशभक्त कहाँ-से-कहाँ पहुँच सकता है, इससे बहस नहीं, बल्कि सवाल यह है कि अंधेरा होने पर भी बिना रोशनी की मदद से यह काम जारी रहेगा । बदाकिस्मती से तेल निपट गया । मैंने अंधेरे की तरफ ध्यान दिलाया । खानम शीशी लेकर “अभी आई” कह कर तेल लाने के लिए उड़ गई । मैंने आवाज़ दी—“लालटेन भी ।” वह अम्माजान के कमरे की तरफ गई थी ।

उस वक्त मैं कमरे में बिलकुल अकेला था । बाहर पेड़ों की शाखें अंधेरे में झूब चुकी थीं । सामने का मैदान एक मूर्ति-

मन अंधेरा-सा होता जाना था। कमरे में तो घोर अंधकार था। दूर पर बिड़ियों के बसेरा लेने की आवाज़ आ रही थी। मतलब यह की अन्धकार अपनी रहस्यमयी चादर में सारी दुनिया को लपेट रहा था। खामोशी का एक आलम छाया था। मैं भी मूर्ति-सा निस्तब्ध बैठा था। अंधेरा क्या था, एक मोहक भावना थी, जिसमें मैं बहुत जल्द गुम होता मालूम हुआ। विचारों की उड़ान और आँखों की लाचारी—ये दो चीज़ें अंधेरे को सचमुच तिलिस्म बना देती हैं। मैं मूक भावनाओं के साथ अवखुली आँखों से बैठा था कि बाईं तरफ से खानम तंज़ो से दाखिल हुई। जान पड़ा कि यह अंधेरी दुनिया के प्रोग्राम का कोई हिस्सा था। लिहाज़ा मैं खामोश का खामोश रहा। लालटेन की चिमनी उठाने का खटका हुआ, तो मैं एक दम से चौंक-मा पड़ा। एक पल के लिए मुड़कर देखा कि खानम मेरी तरफ पीठ किये बैठी लालटेन जला रही है। मैंने कहा—“जल्दी करो।”

पलक मारते लालटेन जल गई। लालटेन मेरी पीठ की तरफ थी। सामने दीवार पर मैंने अपनी और कुरसी की भारी-भरकम परछाईं देखी। फिर दीवार पर खानम की परछाईं पड़ी। शीशी से तेल निकाला, शीशी रखी और मेरे सिर पर तेल की मालिश होने लगी। ये सब बातें मैंने बायस्कोप की तरह परछाईं में देखीं।

मालिश शुरू होते ही हाथों की जुम्बिश और हरकतें सभी परछाईं में दीखने लगीं।

इस बायस्कोप से बचने के लिए पहले तो मैंने कोशिश की कि खानम को दिक् करूँ, इसलिए अपनी अंगुली सिर पर ले जाकर आँखों के सामने नचाई; मगर परछाईं में देखा कि मेरा

बार ख़ाली गया। मैंने बार-बार कोशिश की; मगर हर दफ़ा बार ख़ाली गया। मैंने सोचा कि इस तरह मामला ठीक न होगा। अचानक उसकी नाक पकड़नी चाहिए, इसलिए मैं गौर से परछाईं को देखता रहा। उसकी नाक नहीं दीख पड़ती थी। ज़रा-भा दाहिनी तरफ़ जो पिर मोड़ा, तो उसकी नाक का सिरा परछाईं में नज़र आया। मैंने लपककर नाक पकड़ ही तो ली, और कहकहा लगाकर जो मुड़ा, तो ऊपर की माँस ऊपर और नीचे की नीचे ! यह तो नाजू थी !

मैंने देखा कि लज्जा, शर्म और परेशानी के साथ-साथ उसके मोटे बदनसूरत होठों पर एक सेकेंड पहले मुस्कराहट होने के समस्त चिह्न मौजूद थे। उसकी आँखें नीची थीं; मैं अलग छोटा हो रहा था।

घबराहट दूर करने के लिए मैंने उससे पूछा कि तू यहाँ कैसे आई ? उसने बताया कि ख़ानम को अम्माज़ान ने किर्मी ज़रूरत से रसोईघर में रोक लिया, और उसने उसे तेल की शीशी देकर कहा कि जल्दी से जाकर रोशनी करके मेरे तेल लगा दे।

मैंने लानत के तौर पर उससे कहा—“फिर तुझे साँप क्यों सूँघ गया ?”

यह तो प्रकट है कि मालिश ख़तम हो गई, और मैंने उससे कहा—“भाग जाओ।”

वह हवा हो गई। मैं अकेला कुरसी पर बैठा गौर कर रहा था और कुछ चिन्तित और रंजीदा भी हो रहा था कि इतने में ख़ानम आई। कमरे में रोशनी और ज्योति फैल गई।

ख़ानम ने पूछा कि नाजू ने ठीक से मालिश की या नहीं ? मैंने हाँ में जवाब दिया। उसने कहा कि माँ ने रोक लिया

था। लेकिन मैंने नाजू वाली ग़लतफ़हमी का ज़िक्र तक न किया। शायद यह सोचकर कि वह न-जाने क्या सोचेगी। मैं जानता था कि उस मनहूस नानी ने पहले से ही उसे बरग़ला दिया है, इसलिए 'खाहमख्वाह' बात बढ़ जायगी, लिहाज़ा इसको यहीं ख़तम करो।

×

×

×

इसके तीसरे दिन इतवार था। नहाकर मैं बरामदे के सामने कुरसी पर बैठा तौलिये से सिर सुखा रहा था। नर्म-नर्म धूप फैली थी। नहाने के बाद धूप की हल्की मंफ़ बदन में महसूस हो रही थी। सामने नाजू बैठी ख़ानम के जूते पर पालिश कर रही थी। ख़ानम कमरे के दरवाज़े पर रंगीन पालिश कर रही थी। जान पड़ता था कि ख़ानम ने मेरे सिर की खुश्की के बिज़ाफ़ ज़हाद बोल दिया हो। फ़ौरन नाजू से पुकारकर कहा कि मेरे सर में तेल डाल दे। यह कैसे कहता कि नाजू से काम न लूँगा, इसलिए कह दिया कि थोड़ी देर बाद डालूँगा। सोचा कि तब तक खुद उसे फुरसत हो जायगी।

ख़ानम ने उस दरवाज़े पर अपना काम ख़तम किया तो अन्दरवाले दरवाज़े पर पहुँची। नाजू ने दूसरा जूता शुरू किया ही था कि 'सलाम आलेकुम' कहकर मेरे दोस्त रफ़ीक़ आ धमके। नाजू को इस तरह मेरी निगरानी में मशगूल देखकर अंगरेज़ी में बोले—“इसकी आँखें बहुत अच्छी हैं।”

सहसा मुझे उस मनहूस नानी की बात याद आ गई कि इसकी आँखों में ज़हर है; इसलिए मैंने भी अंगरेज़ी में कह दिया—“ऐण्ड पोइज़नेस टू !” (और ज़हरीली भी)

वे बोले—“बेशक मगर यह दिन-दहाड़े !... ..”

मैंने नाजू को मिंगोट लाने के बहाने भगा दिया, और उससे धीरे से कहा—“अहमक हो तुम ।”

रफ़ीक बोले—“इस वक्त हम तुम्हारी जगह होते और तुम हमारी जगह, तो बजाय हमारे तुम अहमक होते ।”

“इससे क्या मतलब है तुम्हारा ?”—मैंने पूछा ।

उन्होंने कहा—“इस बनावट को तो डालो चूल्हे में । यह बताओ कि सच-सच मामला क्या है ?”

कुछ बनावटी और कुछ सच्चे कड़वेपन से रफ़ीक का उनकी मूर्खता की तरफ ध्यान दिलाया, और अपनी पवित्रता बताई । नाजू को भोंड़ी साबित किया । दवे-झिपे शब्दों में खानम के सौंदर्य की बड़ाई की, और यह जतलाया कि इस तरह का खयाल ही दिल में लाना भूठ है ।

रफ़ीक एक जिद्दी आदमी ठहरे । उन्होंने ‘लाजिक’ के दलीलों की भरमार कर दी । एक नई बहस छिड़ गई ।

नाजू को दुबारा पान के बहाने बुलाया गया । वह पान लाई, तो रफ़ीक ने उसे इतने गौर से देखा कि वह बाँखला गई, और पान की तश्तरी उसके हाथ से छूट पड़ी होती । वह तो चली गई । मैंने फ़ौरन ही दुबारा उसके डरावने चेहरे की बात कही, तथा खानम के सुन्दर होने पर फिर जोर दिया; मगर रफ़ीक ने बहस का पहलू ही बदल दिया । उन्होंने मेरी तमाम दलीलें यह कहकर काट दी कि अपनी स्त्री की किसी और स्त्री से तुलना करना ग़लत है, क्योंकि वह अपनी चीज़ है । अब मेरी सारी दलीलें रद्द हो गईं । नाजू के सामने कोई और मौजूद ही न था । लिहाज़ा यह मानना पड़ा कि नाजू वम ठीक है ।

जब यह तै हो गया कि ठीक है। तब यह तजवीज हुई कि क्या किया जाय। मैंने कहा—“कुछ न किया जाय।” रफीक ने कहा—“मिर्फ मेरी खातिर, मिर्फ मेरे कहने से, सिर्फ मेरी फरमाइश पर कम-से-कम यह जाँच जरूर कर लेनी चाहिए कि आखिर को मीरासिन है, चरित्रहीन भी है या नहीं।” इसके लिए उन्होंने कहा कि किसी मौके पर नाजू से कुछ कहा जाय। क्या कहा जाय, यह भी रफीक ने मुझसे बता दिया, और सिर्फ नाजू की जाँच के लिए इसका मुझ से पक्का वादा भी ले लिया।

×

×

×

दूसरे-तीसरे दिन रफीक मिले। पूछने लगे कि नाजू से कहा या नहीं? मैं सचमुच भूल ही गया था। फिर मैंने सोचा तो यह अनुचित मालूम पड़ा। अगले कहीं नाजू खानम ने कह दे, तो और मुसीबत में जान पड़ जाय, इसलिए मैंने रफीक को यह सब कारण बताये। उन्होंने खफा होकर मुझे एक डाँट पिलाई, और कहा—“तुम बड़े नातजुर्बेकार हो।” यह कहकर फिर मुझसे पक्का वादा लिया। इसके दूसरे ही दिन एक अजीब घटना हुई।

तीसरा अंधेरा

दिसम्बर का महीना और महावट की रात। बाहर पेड़ों पर नन्हीं-नन्हीं बूँदें गिरकर राग गा रही थीं। ठण्डी हवा का तेरा रुई और ऊन को काटता हुआ हड़डी के गूदे पर जाकर बोलता था। बलाकी सदी थी।

कमरा चारों तरफ से बन्द था। खानम ने खिड़की खोलकर बाहर देखा और मुझे भी दिखाया, घनघोर घटा छाई थी।

हवा साँय-साँय कर रही थी। बँगले के सामने दूर तक जंगल और खेतों का दृश्य एक खौफनाक अँधेरे में डूबकर रह गया था। बड़ी भयानक अँधेरी रात थी। इस भयावह अँधेरे का अन्दाज़ वही लगा सकते हैं, जिनका कमरा मकान से बिलकुल अलग हो और उसका रुख जंगल की तरफ हो।

खानम ने इस दहशत-भरे 'अँधेरे' को देखकर कहा—
“खुदा की पनाह !” और खिड़की बन्द कर ली।

X

X

X

लुत्फ़ यह कि अभी शाम ही थी। दस भी नहीं बजे थे। इतने में नाजू खाना लेकर आई। सदी से खानम के सर में दर्द था, इसलिए उसने खाने से इनकार कर दिया, और कहा—
“मैं खाने के बजाय हरीरा पियूँगी।”

सोलह बादामों को पीसकर, छटाक-भर मक्खन में मिश्री मिलाकर, घोंट-घाँटकर बघार दिया जाय, तो सर का दर्द काफ़ूर हो जाता है। मुझे खाना खिलाकर नाजू हरीरा तैयार करने गई। इधर मैं छोटी मेज़ पर सिरहाने लैम्प रखकर तकिये के सहारे क्लास की एक किताब पढ़ने लगा। खानम ने माथे पर कसकर रूमाल बाँधा और पलंग का परदा उठाकर आहिस्ता से लिहाफ में सिमटकर लेट गई।

रात का सन्नाटा था, बाहर हवा की तेज़ी की आवाज़ आ रही थी। जान पड़ता था कि अँधेरे और पेड़ों में लड़ाई हो रही थी। मैंने खानम की तरफ देखा। पर्दे की जाली से उसके गम्भीर और पवित्र चेहरे पर रोशनी नाच रही थी। वह वैसी खामोश लेटी थी।

पाँच मिनट भी न बीते होंगे कि खानम ने कहा—“ज़ोर-ज़ोर से मत पढ़ो, मेरे सिर में दर्द होता है।”

मैं खानम का कोई रिश्तेदार तो था नहीं कि इस बात पर खफा हो जाता। मैं तो शौहर था, गुनगुना कर धीरे-धीरे पढ़ रहा था। जवाब में मैंने उसकी तरफ देखे बिना ही कहा—“हुश !” लेकिन फिर भी उसके हुक्म की तामील में और भी धीरे पढ़ने लगा।

इस तरह कोई पाँच मिनट भी न हुए होंगे कि सहसा लैम्प की बत्ती ने कहा—“भुक्क !”

खानम ने चौंककर कहा—“अरे !” मैंने चुपचाप लैम्प की बत्ती कुछ कम कर दी। खानम ने तकिये पर कोहनी टेक कर कहा—“यह लैम्प बुझ जायगा।”

मैंने लापरवाही से कहा—“बुझ जाने दो।” मैं फिर किताब पढ़ने लगा, खानम वैसी ही लेट गई। इतने में नाजू हरीरा लेकर आई। मैंने खानम की तरफ अर्थ भरी दृष्टि डाली। खानम समझ गई, मुसकरा कर बनावटी गुस्से से बोली “फेंक दूँगी प्याला।” मैंने कहा—“खुदा के लिए यह दवा है, पीलो।” उसने हँसी को रोकते हुए धीरे-धीरे पीना शुरू किया। मैं बार-बार खानम को देखकर मुसकरा रहा था। उसने कहा—“तुम्हारी नज़र लग जायगी, यह लो।” यह कह कर उसने बाकी बचा हरीरा मुझे दे दिया। मैं इसके इन्तज़ार ही में था। इधर मैंने लेकर प्याला मुँह से लगाया ही था, उधर लैम्प की बत्ती फिर बोली—“भुक्क !” इतने जोर से कि खानम उछल पड़ी। मैंने फिर बत्ती कम की।

×

×

>

अब लैम्प खामोशी से जल रहा था। नाज़ खानम के सिरहाने जाली में बैठी हुई उसका सिर दबा रही थी। दो बार

वत्ती कम करने से रोशनी बहुत धीमी हो गई थी। मैंने धीरे से वत्ती थोड़ी बढ़ाई। लैम्प बदस्तूर जलता रहा।

कोई पन्द्रह मिनट तक लैम्प चुपचाप जलता रहा। खानम की आँखें बन्द थीं। एक दम से लैम्प ने “भुक्काटा” मारा। खानम उछल पड़ी, और लैम्प ने भड़कना शुरू किया। मैंने वत्ती कम की, तो उसने फुरेरियाँ लेनी शुरू कीं। नन्हीं-नन्हीं फुलझड़ियाँ छोड़कर दीपक राग गाने लगा। अब जो वत्ती कम करता हूँ, तो वह ज्यादा होती है। इंजन की तरह ‘भुक्-भुक्’ करके लैम्प ने आखिरी साँसें लीं, और एक लपक के साथ बुझ गया। अँधेरा घुप।

खानम ने नाजू से कहा—“कम्बख्त, ला जल्दी दियासलाई की डिबिया।” मेरे तर्किये के नीचे दियासलाई नहीं मिली। नाजू सामने की आल्मारी से दियासलाई की डिबिया लेने गई। उससे जरा हटकर, बिस्कुट के पास ही, चार-पाँच चीजों के बीच में, कहीं-न-कहीं दियासलाई की डिबिया भी रखी है। अगर वहाँ न मिली, तो नीचे वाले तख्ते में उसका होना जरूरी है।

अब खानम नाजू को दियासलाई का पते-पर-पता दे रही है; मगर उस ‘अन्धी’ को दियासलाई मिलती ही नहीं। इधर अँधेरे के मारे खानम का जी उल्टा आता है। अँधेरे की यह दशा है कि हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता। मैंने खुद तीसरे पहर दियासलाई आल्मारी में रखी देखी थी। यहाँ तक कि इस अँधेरे में भी मुझे मालूम हो रहा था कि जैसे वह रखी है।

खानम और मैंने जब देखा कि अन्धी नाजू को दियासलाई नहीं मिलेगी, तो इधर मैं उठा और उधर वह नाजू को कोसती हुई उठी। खानम ने मुझसे अँधेरे में कहा—“तुम किधर हो?”

मैंने कहा—“यह क्या हूँ, मैं.....इधर ।”

खानम रंगकर टटोलती हुई आगे पहुँची और धूम के साथ कुरसी में उलझकर गिरी । एक तो दर्द-सिर, दूसरे अँधेरे की तकलीफ, तीसरे दियासलाई न मिलने की जलन और उस पर इस तरह गिरना ! अतः मेरा कर्तव्य क्या था ? यही कि मैं लपका उसे संभालने के लिए । उधर नाजू ने देखा कि उसकी मालकिन गिरी, इसलिए वह बेचारी भी उसे सहारा देने या उठने को बड़ी; मगर अँधेरा तो, जनाब, अँधेरा ही है । नतीजा यह कि खानम के धोके मैंने अँधेरे में नाजू की पीठ पर कृपा का हाथ फेर दिया । उधर खानम झुँझलाकर उठी ही थी कि उसने नाजू समझ कर दिया एक धमाका मेरी पीठ पर कसकर, यह कहते हुए—“कम्बख्त को दियासलाई ही नहीं मिलती ।”

उधर मेरे कृपा के हाथ से नाजू एक “हूँ” करके हुशक गई, इधर मैं खानम का घूँसा खाकर चिल्लाया—“पगली कहीं की..... मैं हूँ ।”

खानम के मुँह से निकला—“अरे !” फिर अँधेरे में हम दोनों के कहकहों की आवाज से कमरा गूँज उठा । खानम का मारे हँसी के बुरा हाल था ।

“किधर हो तुम ?”—उसने हँसी को रोकते हुए कहा ।

“यह क्या हूँ ।”—मैंने कहा ।

“खुदा के वास्ते दियासलाई.....उस कम्बख्त को मिलती ही नहीं ।”

इतना कहकर खानम खुद आल्मारी की तरफ बढ़ गई । कुछ खटपट की आवाज आई फिर दियासलाई के बक्स की दिलखुश आवाज भी । “इस कम्बख्त को दियासलाई ही

नहीं मिलती थी, यह लो।”—कहकर खानम ने दियासलाई देने को मेरी तरफ हाथ बढ़ाया। हिमाकृत तो देग्विये, खुद न जलाई। बात यह थी कि वह दूसरे हाथ में बिस्कुट का डिब्बा, गिलास वगैरह चीजें सम्हालते थी। अब हालत यह थी कि घनघोर अँधेरे के कारण आँखों में तो तारे नाच रहे थे, और केवल छाया की भाँति नाजू और खानम का अस्तित्व सियाही में एक भावना की तरह मालूम हो रहा था। खानम ने मेरी तरफ दियासलाई वाला हाथ बढ़ाया। वह मेरी ऐनक के पास पहुँचा, लेकिन मुझे इसकी खबर न हुई। दूसरी तरफ मैंने जो दियासलाई लेने को हाथ बढ़ाया, तो बदकिस्मती मुलाहजा हो कि वह पहुँचा नाजू के कान के आस पास। उस कान की मालकिन खानम को समझकर मेरे नामाकूल हाथों ने कान की पश्चिमी तरफ के मैदान की नाप-जोख का ख्याल हाँ किया था कि कान की असली मालकिन नाजू ने एक दर्बा-घुटी “ऊँह” के साथ मेरे हाथ को जोर से जो भटका, तो वह खानम के हाथ की दियासलाई को, जो मेरी ऐनक के पास पहुँची हुई थी; मेरी ऐनक के समेत उड़ाता चला गया। “अरे मेरी ऐनक !” बौखलाकर मैंने नाक टटोलते हुए कहा।

“चुड़ैल, कम्बख्त, यह क्या हुआ...?” खानम ने कहा।

मैंने कहा—“हिलना मत अपनी जगह से, वरना मेरी ऐनक की खैर नहीं। खड़ी रहो ज्यों की त्यों।”

खानम नाजू पर वरम पड़ी—“अरी कम्बख्त, यह तूने इतने जोर से क्यों हाथ चलाया ? अन्धी कहीं की.....आई वहाँ से पटेबाजी करने.....बोलती क्यों नहीं, कम्बख्त—यह अँधेरे में कोई ऐसे हाथ नचाता है ? बात क्या थी.....” इत्यादि।

मैं अपनी ऐनक टटोल रहा था। खानम बोली—“तुम क्या ऐनक ढूँढ़ रहे हो ?”

मैंने कहा—“हाँ।”

वह बोली—“मो तो मैं समझी ही थी। अंधेरे में अकल भी ग्यो बैठे। अरे, पहले दियासलाई देखते।”

मैंने कहा—“तुम खुद हो निरी... मैं ढूँढ़ रहा हूँ। दियासलाई हाथ पड़ जायगी, तो क्या छोड़ दूँगा ?”

“यह तो मैं भी जानती हूँ; मगर दियासलाई इधर कहाँ हो सकती है ? ऐनक को छोड़ो और उधर देखो दियासलाई को... किधर हो ?... गिरे अब तुम भी उलझकर... (नाजू से) किधर गई कम्बख्त... देख रही है, बीच से कुरसी नहीं हटाती... उधर कर दे... यह उधर... तू मत ढूँढ़ कुछ।”

वदकिस्मती देखिये कि खानम ने कुरसी बताने में गलती की या अंधेरे में खुद नाजू का अन्धापन था; जो भी हो, मैं झुका हुआ था, और जिसे नाजू ने कुरसी समझा था, वह यह सेवक ही था। लिहाजा नाजू ने कुरसी के धोके अब पकड़ी मेरी नाक ! मगर जैसे जलते तवे को आदमी छूते ही, बल्कि छूने से पहले ही, छोड़ देता है, या हाथ खुदबखुद उछल जाता है, वैसे ही नाजू के साथ हुआ। मेरी ठोड़ी पर जोर का एक धिस्सा लगा। “अरे !” मेरे मुँह के निकल गया; मगर साथ ही मुझे दियासलाई मिल गई। मैंने जल्दी से एक सीक खींचकर मानों दिन कर दिया। दियासलाई मेरे सिर पर थी, और उसकी रोशनी नाजू और खानम पर पड़ी। दोनों की आँखें चौंधिया गईं। जब नाजू ने मेरी ऐनक उठाकर दी, तब मैंने बुझती दियासलाई की रोशनी में उसका चेहरा देखा। उसकी

आँखों में खानम की पड़ोसिन नानी वाला ज़हर दिखाई दिया । खानम ने दियासलाई मुँहसे लेकर दूसरी सींक खींचकर मोमबत्ती में लगा दी, और दिन हो गया ।

X

X

X

अँधेरे की जादूभरी सियाही को रोशनी के भाले लगे, और धीमी रोशनी में कमरा जगमगा उठा । खानम ने नाजू को लालटेन लेने भेजा । मैं पलंग पर बैठकर सोचने लगा । मेरे कान में उन बड़ी बी के शब्द गूँजते जान पड़े । क्या मैं मचमुच साँप हूँ, जो मौका पाते ही चुटक लूँगा ? क्या नाजू की उठती जवानी इतना प्रभाव रखती है कि मैं अपनी प्यारी जीवन-संगिनी को छोड़ बैटूँगा ? लाहौलबिलाकूवत ! कहाँ राजा भोज, कहाँ गँगुआ तेली ! नानी की बच्ची कहीं की । एक ही फिसादिन मालूम होता है । बल्कि है... बिल्कुल ।

दूसरे दिन की बात है । मैं अकेला कुरसी पर बैठ पिछली रात की घटना पर गौर कर रहा था । अँधेरे की गड़बड़ में जो कुछ मामूली घटनाएँ हुई थीं, वे तो होती ही रहती हैं; मगर खानम से मैंने इस बात का जिक्र भी नहीं किया । अब सोच रहा था कि कह दूँ या नहीं । कहने की तो कोई बात है नहीं कि खानम के धोके में मैंने नाजू का कान मरोड़ दिया, या नाजू ने कुरसी के धोके में मुझे खींच लिया । फिर खयाल आया कि कहीं नाजू ने खुद खानम से कह दिया, तब क्या होगा ? इस खयाल से तबीयत को बेचैनी-सी मालूम हुई । कहने को तो मैं फौरन कह देता—उसी वक्त कह देता; मगर मुझे डर था कि ज़रा-सा सन्देह खानम को कहीं से कहीं पहुँचा देगा । बैठे-बिठाये उसके दिल को ठेस लगेगी ।

मैं इसी फिक्र में डुर्बाकियाँ ले रहा था कि भाई रफीक आ गये। मैंने दिल में कहा—खूब मौके से आये, और फौरन उनसे अंधेरे की सब दिलचस्प घटना कह सुनाई। वे खूब हँसे, और मैं भी खूब हँसा। मुझे उन्होंने सलाह दी कि हरगिज़-हरगिज़ खानम से न कहना चाहिए; बल्कि चुपके नाज़ से कह देना चाहिए कि वह भी खानम से न कहे।

इसके बाद ही नाज़ की वास्तव और बातें हुईं। मामला दर्पेश यह था कि इसका पता लगाया जाय कि कहीं सचमुच में 'चरित्रहीन' तो नहीं है। नाज़ को बुलाया गया, और रफीक ने मुझसे उसका चेहरा एक नये कोण से देखने को कहा। फिर उमकी परीक्षा लेने का मख्त तकाज़ा करके रफीक चले गये।

रफीक के जाने के बाद मैं इस फिक्र में था कि नाज़ से जरूर कह देना चाहिये कि अंधेरे की ग़लत फहमी को खानम से कहकर उसे तकलीफ न पहुँचाये। मैं इसी फिक्र में था कि एक सुनहरा मौका हाथ आ गया। खानम रसोई घर में लगी थी। उसने मेरे तकिये के नीचे से ताली लाने को नाज़ से कहा। मैं तकिया लगाये पलंग पर लेटा था। नाज़ आई, और पास पहुँच कर ठिठककर रह गई। मैंने पूछा, तो उसने अपना मतलब बताया। मेरे हाथ किताब से घिरे थे; इसलिए मैंने सिग उठा दिया कि कुञ्जी निकाल ले। वह कुञ्जी निकालने के लिए झुकी, तो उसका चेहरा उस नये कोण से मुझे दिखाई दिया, जो रफीक ने बताया था। लिहाज़ा इस कोण से देखने से उसका मुँह चौथाई रह गया। नाक के अस्तित्व का भी कायल होना पड़ा। बड़ी-बड़ी गिलाफी आँखें लम्बी पलकों की ओट से बहुत खूबसूरत मालूम हुईं। उसने कुञ्जी निकाली, तो मैंने भट से एक हाथ से किताब छोड़कर कुञ्जी की जञ्जीर

पकड़ ली, और उससे कहा—“सुन तो……रात के अँधेरे की गड़बड़ का तूने……कह तो नहीं दिया।” कुर्ची का एक सिरा वह पकड़े थी, दूसरा मेरे हाथ में था। उसने जवाब में कुछ देर की। मैंने धीरे से जंजीर को भटक कर कहा—“अरी कम्बख्त, कहीं कह मत दीजियो।” यह सुनकर वह मुसकाई, और उसने ज़रा जंजीर खींची, तो मैंने छोड़ दी। जाते-जाते उसने दरवाजे पर पहुँच कर मुड़कर देखा। वह मुसकरा रही थी। मैंने घूँसा दिखाकर कहा—“खबरदार, कहना मत।” वह चली गई। मैंने अपनी उम्र में पहली बार एक अजीब घबराहट और परेशानी का अनुभव किया। रोंगटे खड़े हो गये। कहीं खानम से जाकर यह सब बातें न कह दे, यह सोचकर बदन में पसीना आ गया, दिल धड़कने लगा।

मैं अभी इसी बदहवासी में था कि बरामदे की मोड़ पर खानम की आवाज सुनाई दी। मैं सन्न हो गया। या इलाही ! क्या नाजू ने सब जाकर कह दिया ! तेजी से खानम के पाँव की आवाज आई। किस तेजी से ? शायद गुस्से में भरी आ रही है। शायद नाजू ने सब कह दिया ! वस, मैं क्या अर्ज करूँ, मेरा दिल हिल गया। माँस रुकती-सी मालूम हुई। अब क्या होगा, यह सोचकर मैंने जल्दी से किताब रखकर रजाई में मुँह छिपा लिया।

पैर की आहट चारपाई के पास हुई। बिल्कुल पास आकर रुक गई। मैं सचमुच सन्नाटे में आकर रजाई के अन्दर सन्न होकर रह गया। मैं तो इस सन्नाटे में था कि एकदम से उसने जोर से मेरा सिर रजाई में दबा दिया। गड़बड़ा कर मैंने रजाई से सिर निकाला। उसकी हँसी की आवाज़ से कमरा गूँजने लगा। उसने हँसते हुए कहा—“सो रहे थे तुम तो।”

लाहौलबिला कूवत ! मैं भी किस ख्याल में था ? उसके चेहरे पर वही खुशदिली थी। मैं बेहद खुश हुआ। दिल ठिकाने हुआ कि नाजू ने कुछ नहीं कहा।

चौथा अंधेरा

शाम को मैं सोच रहा था कि मैं एक तरह से नाजू के बस में हूँ, यह बड़ी वाहि्यात बात है। हरदम धड़का लगा रहेगा कि कहीं वह कह न दे। तबीयत उलभकर रह गई। सवाल यह था कि अब क्या करना चाहिए। सोचा कि लाओ, खुद सब कुछ कह दूँ; मगर हिम्मत न पड़ी। फिर सोचा कि नाजू सीधी लड़की है, वह हरगिज न कहेगी। दूसरे दिन एक दोस्त के साथ शाम को टहलने जाने लगा। खानम बोली—“मैं भी जरा ममानीजान (मामी) की तरफ जाऊँगी।”

जब मैं टहल कर लौटा, तो मड़क छोड़ कर खेतों-खेतों हो लिया, ताकि ठीक अपने कमरे के सामने जाकर निकलूँ। झुटपुटा वक्त था, जंगल और खेतों में किम तेजी से अंधेरा दौड़ता है। देखते-देखते शाम का सुरमा सब कहीं फैल गया। बढ़ते अंधेरे में पेड़ दैत्याकार मूर्तियों जैसे दिवाई देते थे। खेतों और घास पर भी हरियाली की जगह स्याही दौड़ गई। चारों तरफ आसमान पर काली चादरें उठती मालूम हो रही थीं। मैं घर के पास पहुँचा कि सामने ममानीजान वाले बँगले से मैंने देखा कि कोई तेजी से निकला, नहर का नाला फुर्ती से पार किया और तेजी से घर की तरफ बढ़ा। कपड़ा तो साफ नजर न आया; मगर जान गया कि कौन है। “खानम अकेली है”—मैंने दिल में कहा—“लेना चाहिए इसे अंधेरे में। ऐसा डराया हो कि याद ही करे।” दोनों बँगलों में तीन-

चार खेत का फासला है। अहाते का चौड़ा मैदान और जोड़ लीजिए। मैं तेजी से दौड़कर बाएँ हाथ के खेत में घुस गया। अब मैंने पहचान लिया कि खानम ही है। लाल रंग की साड़ी पहने हुए थी। मैंने साड़ी फौरन पहचान ली। वह खेत की मुँडेर पर तेजी से आ रही थी। मैं दाहिनी तरफ़ के खेत में छुप गया।

मैं छोड़ कर उसने खेत का कोना काटा, और बिलकुल मेरे ही पास से होकर निकली। मैंने लाल साड़ी के आँचल को अपने चेहरे के सामने उड़ते देखा। पलक मारते मैंने एक “हाऊ” के साथ उछलकर उसे अपनी दोनों बाँहों में मज़बूती से जकड़ लिया... उधर से एक चीख़ और मेरे मुँह से कहकहे की आवाज़ निकली। तब मुझे पता चला कि जिसको मैं इस आज़ादी और बेतकल्लुफी से जकड़े हुए हूँ, वह खानम नहीं, बल्कि नाजू है! खुदा की पनाह! मैंने उसे एकदम से ऐसे छोड़ दिया कि वह धम से गिर पड़ी। उधर मैं आश्चर्य में डूब गया। वह उठी। मैं उसके बराबर आया। कुछ परेशानी से मैंने दबी ज़बान से कहा—“खुदा के वास्ते, नाजू, इसका... इसका जिक्र मत करना। यह खानम की साड़ी तूने कैसे पहन ली?”

वह बोली—“मुझे आज ही दी है।”

मैंने कहा—“मुझे धोका हो गया... तू कहाँ जा रही है? वह क्यों नहीं आई?”

अब हम दोनों घर की तरफ़ जा रहे थे। वह बोली—“उन्होंने मुझे भेजा कि कमरे में रोशनी कर दूँ, और कह दूँ कि वे ज़रा देर से आयेंगी।”

दो-चार कदम मैं चुप रहा । मनुष्यता को मैंने अपने केन्द्र की ओर झुकते देखा । मनुष्यता जब अपने केन्द्र से दूर होती है, तो वह उच्च भावों से भर कर सद्गुणों को प्रकट करती है, अन्यथा अपने केन्द्र पर रहकर वह नीच प्रवृत्तियों की ओर ही झुकती है । मतलब यह मुझे नाजू का उस वक्त का साथ, न जाने क्यों, दिलचस्प मालूम हुआ । मैंने उससे कहा—“तू डर गई सचमुच ?”

“डरा दिया आपने ।”

“तू क्या समझी ?”—मैंने दिल में खुश होकर कहा ।

“मैं समझी, न-मालूम कौन है ।”

मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा—“अगर तूने कह दिया खानम से, तो बस यह समझ ले कि ग़ैर नहीं है तेरी—कहेगी तो नहीं ?”

“नहीं,” उसने हाथ छुड़ाते हुए कहा, और तेजी से चली । मैं जान बूझकर धीरे हो गया । वह कुछ आगे हो गई । मुझे खयाल आया कि रफीक ने जो कहने को कहा था..... उसका यह सबसे अच्छा मौका है—क्यों न कह दूँ ।”

इसलिए—“सुन तो”—कहकर मैं लपका । पास जो पहुँचा, तो ज़बान लड़खड़ा गई । सब भूल गया, क्या कहूँ, कैसे कहूँ ! हकलाया भी, लेकिन मजबूरन इसलिए और कोई बात करने के बजाय फिर वही बात कही—यानी—“कहेगी तो नहीं ।” इसका जवाब उसने किसी कदर आज़ादी और हँसी से दिया—“नहीं कहूँगी ।”

मैं “अच्छा” कहकर वहीं खड़ा रह गया, ताकि नाजू आगे निकल जाय । फिर धीरे-धीरे टहलता हुआ, न जाने

किस फिक्र में गोते खाता, अँधेरे में ईंटों और गड्ढों से होता हुआ, कमरे में पहुँचा। कमरा खाली था। और लैम्प जल रहा था। मैं आँखें बन्द कर सिर पकड़ कर कुरसी पर लेटकर सोच में डूब गया। सवाल यह था कि मैं नाजू के बस में आ गया; अगर बिगड़ गई, तो फौरन कह देगी। मैं ही स्वयं क्यों न खानम से कह दूँ।

न-जाने कितनी देर तक इसी खयाल में डूबा रहा, मानो सो रहा था। खानम के बूट की सख्त, मगर मीठी और नपी-तुली आवाज से जाग उठा। खानम दरवाजे में घुसी, तो मुझे यह मालूम हुआ कि जैसे आस्मान से कोई परी उतरी हो। तेजी से चलने के कारण रोशनी में उसका चेहरा तमतमा रहा था। उसकी लाल पोशाक ने चेहरे पर आग-सी लगा दी थी। उनके साथ नाजू भी—जो उसे लेने के लिए फिर चली गई थी—आई। एक के बाद इस तरह सामने आई कि मुझे मालूम हुआ, परियों के साथ चुड़ैलें भी होती हैं। खानम तेजी से एक पल के लिए कपड़ा बदलने को गुस्तेखाने में चली गई। मैं नाजू को देखता हूँ, तो किम तमीज और सादगी के साथ उसने खाने के लिये मेज को हटाया है। उसने मेरी तरफ नजर उठाकर देखा, तो मुझे अपनी तरफ देखते पाया। इसने शायद उसे कुछ परेशान कर दिया, और वह तेजी से चली गई।

×

×

×

तान दिन के सोच विचार और उलझन ने मुझे न मालूम किस बेचैनी में डाल दिया। हरदम नाजू के मामले की फिक्र में उलझा-सा रहता; बल्कि उलझकर रह गया। मुझे क्या करना चाहिए, यह सवाल था। इसके साथ-साथ विचारों की एक

ट्रेन की ट्रेन आती थी। यह पहले ही तै हो चुका था कि खानम की सुरत-शक्ल से कुछ बहम नहीं। नाजू बद्सूरत हरगिज नहीं है। फिर वैसे भी एक नौकरानी है। यह ना-मुमकिन है कि कोई और नौकरानी ऐसे तमीजदार और आज्ञाकारिणी (बल्कि कुछ-कुछ दिलचस्प भी) हो सके। वह सारा कमरा और हर चीज दुरुस्त रखती, कपड़ों पर ब्रश करके उन्हें ठीक रखती और हर चीज को यथास्थान फिट रखती है। यह जो सुनते हैं कि रईसों के यहाँ नौकरानियाँ तमीजदार, साफ-सुथरी और नीची निगाह वाली होती हैं, तो बल्लाह, यहाँ भी वही बात थी, मानो हम रईस ही हों ! कम से कम ऊपर से तो यही शान है।

×

×

×

अब एक और लुत्फ देखिये कि रफ़ीक से इस आखिरी ग़लतफ़हमी का मैंने कुछ जिक्र न किया। रफ़ीक जो बात कहलाना चाहते थे, उससे इस किस्से का कोई ताल्लुक नहीं, मगर उसकी फ़िक्र अलबत्ता थी। दिन में दर्जनों मौके मिलते थे, और अब तो इतनी हिम्मत आ गई थी कि मिनट भर का भी मौका मिले, तो कह दूँ। प्रतिदिन दस-बारह मरतबे मौका मिलता; मगर कोई बात न कही जाती, इसलिए हर दफ़ा वही बात कह देता—“कहना मत।”

इसी तरह एक दिन नाजू खड़ी रजाई को पलंग पर जमा रही थी कि मैंने फिर कुछ कहना चाहा; मगर आखिर को वही कहा—“खानम से मत कहना।”

बार-बार यही बात सुनकर वह भी शायद तङ्ग आ गई थी। उसकी तबीयत भी कुछ मौजू हो गई, इसलिए उसने मुसकरा कर कहा—“कह दूँगी।”

मैंने यह सुना और सहसा मेरी आँखों के सामने उसके चेहरे की मुस्कराहट-भरी शरारत क्या से क्या मालूम दी। मैंने उसके इस कथन का इस प्रकार समर्थन किया कि 'कम्बख्त' कहकर उसकी पीठ पर जोर से एक घूँसा दिया। वह हँसती हुई 'आह' करके दोहरी हो गई। "मार दिया जोर से,"—हँसते हुए उसने शरारत से कहा—"कह दूँगी सब कुछ।"

इस बात से मैं इतना घबराया कि सीधा कमरे से भागा। यह देखने को कि खानम कहाँ है। दौड़कर दूसरी तरफ़ से घर में गया। खानम घर के काम में व्यस्त थी। मुझे यह देखकर कि जब मैंने नाजू के घूँसा मारा, वह कमरे से कितनी दूर और बेखबर थी, मुझे बहुत इतमीनान हुआ।

अक्सोस कि यह एक परिणाम का श्रीगणेश था।

पाँचवाँ अध्याय

मैं दोस्तों के साथ चार दिन की छुट्टी में दिल्ली जा रहा था। इस बीच में न-मालूम कितनी बार नाजू के घूँसे लगा चुका था। ले दे के मुझे यही भोंडा मज़ाक आता था। रफ़ीक पचासों बार तकाजे कर चुके थे, मगर जो चाहते थे, वह कहने की अब तक मुझे हिम्मत न पड़ी थी, पर अब ऐसा मालूम होता था कि, लाहौलबिला कूबत, आखिर डर काहे का ?

खानम ने पूछा कि कब लौटोगे, तो कह दिया कि फलाँ तारीख़ को दिन के दो बजे वाली गाड़ी से आयेंगे। यह बिलकुल ग़लत कहा था। हालाँकि उससे पहली रात ही को डेढ़ बजे वाली एक्सप्रेस से आना है। यह मैंने जान-बूझकर कहा था। अब इसकी फ़िक्र थी कि नाजू से अपने आने का ठीक वक्त बता दिया जाय; मगर किस तरह, कैसे और किन शब्दों में ?—यह एक सवाल था।

दिन-भर इसी फ़िक्र में रहा। बात करने का तो मौक़ा मिला; मगर सब बातों के कहने का मौक़ा न मिला। यहाँ तक कि शाम हो गई। ख़ानम घर में बैठी दही बड़े के लिए बेसन फ़ेट रही थी, और बहुत व्यस्त थी। मैं उठकर बाहर चला कि ख़ानम ने नाजू से रसोई घर की आल्मारी की कुंजी मेरे सिरहाने से मँगाई। मैं चौखट तक पहुँच ही चुका था। लिहाज़ा तेज़ी से बाहर निकल गया, और हवा की तरह लपककर अपने कमरे में पहुँचा। पलक मारते मैंने लालटेन बुझा दी, और अँधेरे में बिछौने पर रज़ाई ओढ़ लेटा रहा। मेरा दिल धड़क रहा था, और मैं मिनट गिन रहा था कि नाजू आई। “लालटेन कौन ले गया ?”—उसने अपने-आपसे कहा। वह कहकर वह खटपट करती हुई लौट गई; मगर ज़रा ही देर में फिर आई। मेरा कलेजा बल्लियों उछल रहा था। वह सीधी मेरा सिरहाना टटोलती हुई पहुँची। उसका हाथ मेरे नक़िये के नीचे आया ही था कि मैंने अँधेरे में अपना हाथ उसकी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—“नाजू, ख़ानम से मत कहना।” वह कुछ चौंक-सी पड़ी। मैंने हाथ से उसे अपनी तरफ़ घसीटा, तो वह कुछ चौंक-सी पड़ी। मैंने हाथ से उसे अपनी तरफ़ घसीटा, तो वह बल खाकर मेरी तरफ़ आ गई; मगर अपना सिर बिलकुल दूसरी तरफ़ कर लिया। मैंने उससे काँपती हुई आवाज़ में कहा—“परसों रात को दो बजे वाली गाड़ी से आऊँगा…… कचहरी वाले में……”

इतना कहकर मैंने उसे जोर से घसीटना चाहा, मगर वह जोर करके कुंजी लेकर निकल गई। मैं एकदम से तड़पकर उठा। जल्दी से लालटेन जला दी, और परेशानी दूर करने को एक गिलास-भर पानी हलक़ में उँडेल लिया। कुछ देर चहल-

कदमी की। फिर बेचैनी दूर करने के लिए बहुत इतमीनान से लालटेन धीमी करके लैम्प जलाया, और किताब लेकर मेज के पास बैठ गया।

मगर, जनाव, कैसा पढ़ना, कहाँ का पढ़ना? किन-किन विचारों में डूब गया। डूबकर कहाँ से कहाँ पहुँचा। कमजोरी ने मेरे ऊपर विजय पाई। दिल भर आया। मनुष्यता को अपने केन्द्र से हिलते पाया। यहाँ तक कि मेरी किताब पर टप से एक बूँद आँसू आ गिरा!

मैं तकलीफ से बेकल हो गया। अपनी प्यारी जीवन-संगिनी के अमर प्रेम के दर्द से दिल में खटक मालूम होने लगी। जो मेरे प्रेम में डूबी हुई सती है, जिसने मुझे अपने जीवन का लक्ष्य बना रखा है, जिसका अस्तित्व मेरी मृदु भावनाओं का प्रतिविम्ब है, उससे मैं सब बातें क्यों न कह दूँ? इसलिए मैंने तै कर लिया कि अभी-अभी सब कुछ उससे कह दूँगा। इस विचार से एकदम हृदय को शान्ति जान पड़ी। तबीयत प्रसन्न हो गई। उठकर अन्दर गया, तो देखा कि खानम दहीबड़ बनाने में बेतरह व्यस्त है।

दस बजे की गाड़ी से जा रहा था। चलते-चलाते इरादा किया कि कह दूँ, मगर रुक गया। खानम ने फिर पूछा कि कब आओगे, तो बिना समझे-बूझे वही जवाब दिया, जो पहले दिया था, क्योंकि अब इरादा भी यही कर लिया था कि दिन की गाड़ी से ही आऊँगा, इसलिए मैंने सच ही कहा था। खानम का चेहरा बहुत मनोरञ्जक और गम्भीर मालूम दिया, जब मैंने कहा—“अच्छा, तो अब चलते हैं।” हम दोनों गर्मजोशी से गले मिले, और सलाम कह कर मैं रुस्तस्त हो गया।

छठा अंधेरा

देहली पहुँच कर कौन-कौन से जरूरी काम किये, उनके व्योरे की यहाँ जरूरत नहीं । यह कहिये कि दोस्तों की धमाचौकड़ी में सोचने तक का मौका न मिला; मगर दूसरे दिन रात गये जब सोने को लेटा, तो अजीब विचारों में डूब गया । किसी ने कहा है कि अंधेरे में पत्नी का प्रेम बहुत मताता है, और उसकी बहुत याद आती है, अतः कमरे में अंधेरा था, और खानम की बहुत याद आई । बहुत सोच-विचार के बाद तै किया कि गलती चाहे अपनी थी, या उस मीरामिन की बच्ची नाजू की, अब जो हुआ, सो हुआ । इस नागवार सिल-सिले को खतम करना चाहिए । ज़वानी तो यह होने से रहा (और उस वक्त जोश भी था), इसलिए विचार किया कि अभी-अभी चिट्ठी लिखनी चाहिए । सारा हाल शुरू से आखिर तक लिख देना चाहिए कि नाजू दरअसल अन्वल नम्बर की छटी हुई है । सुबह चिट्ठी डाल देंगे, शाम को चार बजे पहुँच जायगी । दूसरे दिन हम स्वयं पहुँच जायेंगे । अतः यह तै करके उठा, बत्ती जलाई और एक ऐसा लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा कि तबीयत हल्की हो गई । दो बार उसे पढ़ा और फिर बन्द करके रख लिया कि सुबह तड़के ही डलवा देंगे । दिल को इतमीनान हुआ, और सो गया । रात को एक सपना देखा । क्या देखा, सो नहीं बताया जा सकता । सवेरे आँख खुली, तो रात के सपने की बात को दृष्टि में रखकर यही उचित और जरूरी मालूम हुआ कि चिट्ठी को डलवा दिया जाय, अतः होटल के नौकर को चिट्ठी दी कि मैनेजर से टिकट लेकर जल्दी से जल्दी उसे डाल दे । मैं गुसलखाने में चला गया ।

X

X

X

वहाँ से लौटकर आया, तो क्या देखता हूँ कि यार लोग कमरे में खड़े सिर जोड़े मेरी चिट्ठी पढ़ रहे हैं। मुझे देखते ही एक कहकहा लगा। गुस्सा मुझे भला कैसे आता, बल्कि यह कहिये कि आने कब दिया जाता ? चिट्ठी पढ़ी जा चुकी थी। मैंने शील और मर्यादा का लेक्चर देते हुए उनसे चिट्ठी छीन ली। एक ने कहा—“यार, बड़े घुटे हुए निकले !” दूसरे साहब ने कहा—“हो ना अहमक !” मैंने जो पूछा, क्यों ? तो बोले—“जोरू तबीयत ढीली कर देगी। आये वहाँ से चोंचले में। क्या समझे हो कि जोरू इस खत को पाकर खुश होगी ?”

मैंने कहा—“क्यों नहीं ?”

वह बोले—“जरूर ! (इस पर जोर देकर) तुम्हें इतनी अक्ल न आई कि भाई, अगर गलती हुई और सचमुच मामले को आया-गया करना है, तो अब यह भगड़ा खड़ा करने से आखिर क्या मतलब ?”

दूसरे साहब बोले—“मामले को यही खतम कर दो, वरना...”

“वरना क्या ?”—मैंने कहा।

वह बोले—“वरना यह कि खत पाते ही जोरू जूतियों में दाल बाँटना शुरू कर देगी, और न बाबा से पिटवाये, तो मेरा जिम्मा। मियाँ, इन बातों पर घर से निकाले जाओगे। खत मिलते ही वह नाजू को मारेगी, और फिर बात छिपेगी नहीं। नतीजा जाहिर है।”

अतः इस तरह यारों ने आलोचना की और मसखरेपन के बाद यह सलाह दी कि मामले को चूल्हे में भोंको और

किस्सा खतम करो। लिहाजा इस किस्से को खतम किया। मालूम हुआ कि मैं सचमुच गलती कर रहा था: मगर मैंने चिट्ठी को जेब में रहने दिया।

× × ×

दिल्ली से चलने का राय हुई, तो मैंने कोशिश की कि इस तरह रवाना होऊँ कि उस वक्त घर पहुँचें, जिसका खानस से वादा किया था, मगर सार्थी न माने, और खानगी वहीं रही। जिससे रात को डेढ़ बजे पहुँचें, जिसका नाजू से वादा था। अकेले भला कौन जाने देता ? मजबूरी थी ।

मेरा विस्तार बरौंग एक और माहव के होल्डाल में था। और दूसरा मामान भी और लोगों के मूटकेमों में था। मैं तो खाली हाथ था।

X X X

रात को ढाई बजे होंगे, जब बैंगल के अटाने में पहुँचा। तरह-तरह के विचारों में डूबा था। ताँगे को फाटक पर से ही बिदा किया, और सीधे अपने कमरे में पहुँचने के उगड़े से आहिस्ता आहिस्ता सोचता हुआ चला।

रात अँधेरी थी। सर्दी कड़क की थी। मगर हवा बन्द थी। चारों तरफ एक खामोशी छाई थी। बँगले का दृश्य अँधेरे में काले आकाश तक उठी हुई किसी दैत्य की मूर्ति-सा नजर आता था। इधर-उधर पेड़ एक अवर्णनीय कालिमा में लिपटे अँधेरे के सन्तरी बने खड़े थे। मैं गले में उनी मफलर लपेटे, सर्दी से बचने के लिए हाथ पतलून की जेबों में डाले। मोचता जा रहा था।

जो कुछ भी हो चुका था, उने तो गोया खतम कर ही चुका, मगर सवाल यह था कि वह हर्षा या नी नाजू की

बच्चा क्या मचमुच मेरे कहने के मुताबिक कचहरी वाले कमरे में सो रही होगी ? देखना चाहिए, या मारो गोली ।

जब मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ से या तो सीधा अपने कमरे की तरफ जाऊँ, या बाईं तरफ मुड़कर कचहरी के कमरे को देखूँ, और नाजू को कमकर एक डाँट बनाऊँ, तो वहाँ पहुँचकर अपने-आप रुक गया । कुछ देर खड़ा रहा । कभी मोचता, मारो गोली और मरने दो उसे । कभी ख्याल आता कि कम-से-कम परीक्षा तो करनी चाहिए । इसी पशोपेश में दो-चार सेकण्ड गुजर गये कि एकदम से मेरे पैर कचहरी वाले कमरे की तरफ बढ़ गये । तै हो गया कि देखना चाहिए ।

बरामदे के पास पहुँचा । वहाँ पेड़ों की छाया ने अंधेरे को और भी बना कर दिया था । हाथ को हाथ न सूझता था । बरामदे में चोर की तरह धीरे से घुसा । खामोशी और अंधेरे में कमरे की ओर बढ़ने से दिल तेज़ी से धड़कने लगा । आहिस्ता से जो कमरे के दरवाज़े को छुआ, तो तन वदन में मनमनी दौड़ गई । दिल बल्लियों उछलने लगा, क्योंकि दस्तूर के मुताबिक, दरवाज़ा बन्द न था, बल्कि खुला हुआ था ! मतलब यह कि नाजू अन्दर है, यह निश्चय हो गया । जाहिर है कि जब उद्देश्य मिट्ट हो गया, जो बात जानना चाहता था, उसका पता लग गया, तो अब मुझे वापस चला जाना चाहिए था, मगर अर्ज है कि जब आदमी की शामत आती है, तब अकल भी साथ नहीं देनी । अतः विचार आया कि लाओ देख लें ।

कमरे में मिर डालकर देखा, तो एकदम सियाही छाई हुई थी । सिवा दिल की धड़कन के और कुछ सुनाई न दिया । अन्दर आहिस्ता से घुसा । दाहिनी तरफ मुड़कर आगे बढ़ा,

और सोफे को जो टटोलकर देखा, तो गज्राई ! क्या अब भी थक की कोई गुञ्जाइश थी ? मगर नहीं ! अब वापसी नामुमकिन थी, और विलकुल निर्णय जरूरी था । नतीजा यह कि मैंने गज्राई तो जरा सरकाई, तो सोने वाली ने बड़ी सी साँस लेकर करबट ली, और मेरी जवान से एक अजीब रहस्य भरे स्वर और कॉपती आवाज़ से निकला—“नाजू !” नाजू !” नाजू गज्राई को अलग करके उठ बैठी, और साथ ही मैं नाजू कहकर जो सोफे पर बैठने को हुआ, तो खुदा की पनाह !

अन्धेर

अर्ज यह है कि इससे पहले न तो मैंने कभी बस का गोला छूटते देखा था, न मैं खुद किसी ताप में भरकर दागा गया था और न किसी मैंग्रीज के साथ भक से उड़ गया था । किन्ता मुश्तमल यह कि यह पहला ही मौका था । उसे करनी का फल कहिये मूर्खता कहिये या बंद की बात कहिये कि “नाजू” कहते हुए मैं बैठने को था कि एक नूफान बरपा करने वाला भूचाल-सा आया ! जोर का धमाका हुआ । बस, यह मालूम हुआ कि सोफा और कमरा सब उड़ गया ! या मेरे अल्लाह ! अँधेरा नहीं, सचमुच का ‘अन्धेर’ हो गया !

ग्वानम की गजबनाक चीख थी कि बस का गोला ! धमाके के साथ आग की लपक भी थी, यानी वाकया यह था कि ग्वानम के हाथ में बिजली का चेंबी टार्च जल रहा था । मैं इस विस्फोट के हलचल में चौखला कर कह रहा था—“चिट्ठी . . . चिट्ठी . . . चिट्ठी !” मगर तोबा कीजिए !

अब इसके बाद क्या हुआ ? इसके लिए निवेदन है कि

उसे खुफिया-विभाग में ही गुप्त रहने दीजिए। क्योंकि मैं बतलाऊँगा नहीं, भूठ से फायदा क्या ? कल्पना दौड़ाने के लिए इतना बताया जा सकता है कि पाँचवे अँधेरे में नाजू कमबख्त के धोके खानम से ही मैंने कहा था—“खानम से मत कहना... परमों गत में आऊँगा। कचहरी वाले कमरे में...”
...आह !

परिणाम

यहाँ इससे बहस नहीं कि नाजू निकाल दी गई और उसके बाद वह डरावनी शक्ल वाली नौकरानियाँ देखने में आ रही हैं कि मेहमानों ने इस डर से कि कहीं डर या सहमकर मर न जायँ, अपने बच्चों को साथ लाना छोड़ दिया; या यह कि अगर आप चुड़ैलों के कायल न हों, तो कभी हमारे घर हो जाइये. यहाँ तो वर्तमान स्थिति का जिक्र है। खुदा कसम, एक बिना नाक वाली नौकरानी कुछ दिन रहकर चली गई है, और उसके गम में घर वाला तड़प रही। बात यह है कि अच्छी नौकरानी जरा मुश्किल से मिलती है, किमी लालच से कमबख्त नहीं आती। अफसोस !

अंगूठी की मुसीबत

“तो क्या मैं चाबियों का गुच्छा ले आऊँ ?”—मैंने शाहदा से पूछा ।

“अपने ब्याह की ऐसी धुन ?” शाहदा बोली—“अच्छा जा !”

मैं प्रसन्न होती हुई कमरे से बाहर निकली ।

दोपहर का समय था । चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था । माता जी अपने कमरे में सो रही थीं । एक टहलती पंखा भल रही थी । मैं चुपके से बाहर वाले कमरे में पहुँची, और मसहरी के तकिये के नीचे से चाबियों का गुच्छा लेकर सीधी कमरे में आई, और शाहदा से कहा—“जल्दी चलो ।”

हम दोनों ने धीरे से पंजों के बल चलकर, कि कहीं कोई पैर की आहट न सुन ले, जीने की राह ली । ऊपर पहुँची, और पिता जी वाली छत पर भी वैसा ही सन्नाटा पाया । सबसे पहले दौड़कर मैंने वह द्वार, जो जीने से बाहर आने जाने के लिए था, बन्द कर दिया । फिर वह द्वार, जिससे अभी हम लोग ऊपर आई थीं, बन्द कर लिया । अब हम लोग पिता जी के कमरे में घुसीं । मैंने उनकी आलमारी का ताला खोला । क्या देखती हूँ कि सामने बीच वाले तख्ते पर बहुत से पत्र और चित्र रखे हैं । एक चीज की ओर इशारा करके शाहदा बोली—“वह देख, वह देख, वह तो अच्छा है !”

मैंने कहा—“नहीं, शुरू से देखो। इस ओर से।” यह कहकर मैंने पहला वंडल खोला, और उसमें से चित्र निकाला। वह एक प्रोफेसर साहब का चित्र था, जिनकी अवस्था कोई पैंतास वर्ष की होगी। वह एक बहुत ही बढ़िया सूट पहने, बड़ी शान से कुर्सी का तकिया पकड़े खड़े थे। कुर्सी पर उनका पाँच वर्ष का बालक बैठा था। उनकी पहली स्त्री का स्वर्गवाम हो चुका था, और अब मुझसे ब्याह करना चाहते थे। नाम, पता इत्यादि सब चित्र की पीठ पर लिखा हुआ था।

“यह ले, पहले ही विस्मिल्लाह गलत!”—शाहदा बोली।

मैंने चित्र देखते हुए कहा—“क्यों, क्या यह बुरा है?”

“दुष्ट, यह दुहाजू है।”—शाहदा बोली—“इससे भूलकर भी ब्याह न कीजियो। तू तो अपनी तरह कोई काँरा ढूँढ़। अरी, तनिक इस बालक को तो देख। अगर तेरे नाकों में दम न कर दे और नथनों में तार न डाल-डाल दे, तो मेरा नाम नहीं। देखती नहीं कि विष की गाँठ कितना चंचल है, और फिर रात में तेरी सोत स्वप्न में आकर अलग गला दबायेगी।”

“तू तो सिड़िन हो गई है।”—मैंने कहा—“शाहदा ढंग की बातें कर।”

शाहदा ने हँसकर कहा—“मेरी बला से, मुझे क्या, कल करती हो, तो आज कर ले। मेरी समझ में तो इस प्रोफेसर को भी कोई ऐसी ही मिले, तो ठीक रहे, जो दो-तीन नटखट बच्चे दहेज में साथ लाये, और सब मिलकर इसके बालक को मारते-मारते इसका कचूरा निकाल दें। चल, इसे रख और दूसरा देख।”

प्रथम चित्र पर यह रिमाक पास किया गया, और उसको जेसा का जैसा रख दिया ।

दूसरा चित्र उठाया और शाहदा से पूछा—“यह कैसा है ?”

शाहदा ध्यान से चित्र को देखकर बोली—“वैसे तो ठीक है, परन्तु कुछ काला है । कौन से दर्जे में पढ़ता है ?”

मैंने चित्र को भली प्रकार देख-भालकर कहा—“बी० ए० में पढ़ता है । काला तो ऐसा नहीं है ।”

शाहदा बोली—“हूँ, यह तुझे क्या हो गया है ? जिसे देखती है, उरी पर रीझ जाती है ! न काला देखती है, न गौरा । न बूढ़ा देखती है, न जवान ।”

मैंने जोंग से शाहदा के चुटकी-भर के कहा—“दुष्ट, मैंने तुझे इर्मीलिय बुलाया था कि मुझे खिजावे ? ध्यान से देख ।”

ध्यान से चित्र को देखकर और कुछ मोचकर शाहदा बोली—“बरन, यह किर्सा तरह भी ठीक नहीं । मैं तो यहीं कहूँगी, वैसे नृ जाने ।”

मैंने कहा—“पत्र तो देख, कैसे धनवान का बेटा है ।”

यह चित्र एक विद्यार्थी का था, जो टेनिस का बल्ला लिये हुए बैठा था । दो-तीन पदक लगाये हुए था, और दो-तीन जीते हुए ‘कप’ भी मेज पर रखे थे ।

शाहदा बोली—“वैसे तो लड़का अच्छा है । उम्र में भी तेरे जोड़ का है, मगर अभी पढ़ता है । और तेरी भी शौकत की-सी दशा होगी कि दस रुपया मासिक जेब खर्च और कपड़े पर चाकर हो जावेगी और माम-ननद की रात-दिन जूतियाँ । यह तो बखेड़ा है ।”

मैंने कहा—“बी० ए० में पढ़ता है । वर्ष-दो-वर्ष में नौकर हो जायगा ।”

शाहदा बोली—“टेनिस का जमादार वैसे भी हो रहा है। तू देख लीजियो कि दो-तीन बार फेल होगा। साम-ननद ताने देगी कि वह पढ़ने नहीं देती। फिर वह दौड़ने-धूपने का शौकीन। तुझे रपटा मारेगा। वैसे तो लड़का अच्छा है। सूरत भी भोली-भाली है, और ऐसा कि जब कुछ छेड़-छाड़ करे, तो ताक में बैठाल दिया; किन्तु न बाबा, मैं यह सलाह न दूँगी।”

इस चित्र को भी रख दिया। अब दूसरा बंडल खोला, और उसमें भी एक चित्र निकला।

“अरे यह निगोड़ा पान का गुलाम कहाँ से निकला।” शाहदा हँसकर बोली—“देख तो दुष्ट की दाढ़ी कैसी है, और फिर मूँछें उसने ऐसी कतरवाई हैं, जैसे मींग कटाकर बछड़ों में मिलने की कहावत है।”

मैं भी हँसने लगी। यह एक बड़े-भारी रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे, और उनकी अवस्था भी अधिक न थी, किन्तु मुझे वह तनिक भी पसन्द न आये।

ध्यान से शाहदा ने चित्र देखकर प्रथम तो उनका उपहास किया, फिर कहने लगी—“ऐसे को भला कौन लड़का देगा? न-मालूम इसके कितनी लड़कियाँ और स्त्रियाँ होंगी। फेंक इसे।”

यह चित्र भी रख दिया गया। दूसरा बंडल खोलकर एक और चित्र निकाला। यह तो बड़ा गबरू जवान है। “इससे तू तुरन्त कर ले।”—शाहदा चित्र देखकर बोली—“यह कौन है, देख तो?”

मैंने देखकर बताया कि डाक्टर है।

“बस। बस। बस। यह ठीक है। अच्छी तरह तेरी नाड़ी टटोल-टटोलकर थरमामीटर लगायेगा। चेहरा-मोहरा भी ठीक

है ।” शाहदा ने हँसकर कहा—“मेरा दूलहा भी ऐसा ही हटा कटा बहुत तन्दुरुस्त है ।”

मैंने हँसकर कहा—“दुष्ट, फिर भी तूने ऐसी बातें कहाँ सीखीं ? क्या तूने अपने दूलहा को देखा है ?”

“देखा तो नहीं, किन्तु सुना है कि बहुत सुन्दर है ।”

मैंने मुसकराकर चिढ़ाने की नियत से कहा—“खाक. भहा-सा होगा ।”

“भहा-सा होगा ?” शाहदा धवराकर बोली—इतना तो मैं जानती हूँ कि जो कहीं वह तेरे सामने पड़ जावे, तो तू उस पर जरूर ही रीझ जावे ।”

मैंने अब डाक्टर साहब के चित्र को ध्यान से देखा और उसकी छानबीन की । यह बात न थी कि वह मुझे बुरे लगे हों किन्तु इस विचार से कि आपस में एक-दूसरे के विचार मिल सकें, मैंने कहा—“इनकी नाक जग कुछ मोटी है ।”

“सब ठीक है ।” शाहदा बोली—“जग इसका खत तो देख ।”

मैंने देखा, केवल दो पत्र हैं । पढ़ने से मालूम हुआ कि इनकी पहली खाँ मौजूद है, किन्तु पगली हो गई है ।

“दूर कर, दूर कर, इस कम्बख्त को आँख आँटकर,” शाहदा ने कुढ़कर कहा—“भूँठा है दुष्ट । कल को तुझे भी पागलखाने में डालकर तीसरी को तकेगा ।”

डाक्टर साहब भी छोड़ दिये गये, अब आँग एक चित्र उठाया ।

शाहदा ने आँर मैंने ध्यान से इस चित्र को देखा । यह चित्र एक चढ़ती अवस्था वाले सुन्दर जवान का था । शाहदा ने पसन्द करते हुए कहा—“यह तो ऐसा है कि मेरी भी गल

टपकी पड़ती है। देख तो, कितना मुन्दर जवान है, बस, इसमें आँख मीचकर कर ले, और इसे गले का हार बना लेना !”

हम दोनों ने ध्यान से इस चित्र को देखा। सब प्रकार अच्छा लगा और पास भी कर दिया। शाहदा ने उसके पत्र देखने की इच्छा प्रकट की। पत्र जो पढ़े, तो मालूम हुआ कि आप विलायत में पढ़ते हैं।

“अरे राम ! राम ! छोड़ इसे।”—शाहदा ने कहा।

मैंने कहा—“कोई कारण भी है ?”

“वजह यह कि इसे भला वहाँ की मिमें छोड़ेंगी। अजब नहीं, वह एक आध को साथ लावे।”

मैंने कहा—“फिर इससे क्या होता है ? अहमद भाई को तो देखो, पाँच वर्ष विलायत में रहे, तो क्या हो गया ?”

शाहदा गर्म होकर बोला—“बड़े तेरे अहमद भाई। रजिस्टर लेकर वहाँ की भावजों के नाम लिखना शुरू करेगी, तो सारी उम्र बीत जायेगी, और रजिस्टर पूरा न होगा। मैं तो ऐसा जुआ न खेलूँगी, न किसी दूसरे को मलाह दूँगी। यह उधार का-सा मसला ठीक नहीं।”

यह चित्र भी मन न भाया, और रख दिया गया। इसके बाद एक और निकाला। शाहदा ने चित्र देखकर कहा—“यह तो खुदा की दुआ से इतने दुबले-पतले हैं कि मुई के नकुए में से निकल जायेंगे। अगर कोई आँधी का झकोरा आया, तो उड़-उड़ा जायेंगे, और तू बेवा हो जायगी।”

इसी भाँति दो-तीन चित्र और देखे, फिर असली चित्र आया, जिसे देखकर मेरे मुँह से अचानक निकल गया—
“ओहो !”

“मुझे दे, देखूँ, देखूँ”—कहकर शाहदा ने चित्र ले लिया । हम दोनों ने ध्यान से उसको देखा । यह एक बड़ा-सा चित्र था । प्रथम तो जिसका चित्र था, वह आप ही जीता-जागता चित्र बन रहा था और फिर इतना माफ और उत्तम रीति से खींचा गया था कि रोम-रोम का अक्स था । शाहदा ने हँसकर कहा—“इसे मत छोड़ियो । ऐसे मिलें, तो मैं दो कर लूँ । यह है कौन ?”

चित्र को उलटकर देखा । जैसे दस्तखत ऊपर थे, वैसे ही पाठ पर भी थे, किन्तु शहर का नाम लिखा हुआ था । और पत्रों के बिना देखे, मुझे ज्ञात हो गया कि यह किसका चित्र है । मैंने शाहदा से कहा—“यह वही हैं : जिनकी उस दिन मैंने तुझसे चर्चा की थी ।”

“अच्छा, यह वैरिस्टर साहब हैं !” शाहदा ने प्रसन्न होकर कहा—“इनकी सूरत तो अच्छी है, मगर कुछ चलती-चलाती भी है ?”

मैंने कहा—“अभी क्या चलती होगी । अभी आये ही कितने दिन हुए ।”

“तो फिर हवा खाते होंगे ।” शाहदा ने हँसते हुए कहा—“परन्तु तू उससे जरूर ही कर ले । खूब तुझे मोटरों पर घुमावेगा, और सिनेमा और थियेटर भी दिखावेगा, जलसों में भी नचावेगा ।”

मैंने कहा—“कुछ कंगाल थोड़े ही हैं । इस वक्त तो पिता के सर खापी रहे हैं ।”

शाहदा ने चौंककर कहा —“अरी, सुन तो सही ।”

मैंने कहा—“कहो ।”

शाहदा बोली—“रूप-रंग भी अच्छा है। बहुत गोरा चिट्ठा है। यहाँ तक कि तेरे से भी अच्छा है। और उम्र भी ठीक है। मगर कहीं कोई मेम-वेम तो नहीं पकड़ लाया है ?”

मैंने कहा—“मैं क्या जानूँ, लेकिन अगर कोई साथ होती। तो ब्याह काहे का करते ?”

“ठीक। ठीक।” शाहदा सर हिला कर बोली—“बस, अब तू अल्लाह का नाम लेकर उसे फाँस।”

मैंने चित्र उठाये, और शाहदा दूसरे चित्र देखने लगी। मैं पत्र पढ़ रही थी, और वह एक चित्र की ओर मुँह बना रही थी। मैंने प्रसन्न होकर पत्र का कुछ भाग उसे सुनाया। शाहदा सुनकर बोली—“वाह ! वाह !” और आगे बढ़ी। तो कहने लगी—“वह माग !” इसी तरह माग पत्र पढ़ डाला।

शाहदा ने पत्र सुनकर कहा—“यह तो सब कुछ ठीक है, और चूल बैठ गई। अब तू गुड़ बाँट।”

हम दोनों ने इस चित्र को ध्यान से देखा। दोनों का सब प्रकार भला लगा। यह एक नई उमर वाले बैरिस्टर थे, और बहुत ही सुन्दर जँचते थे। नाक-कान इत्यादि सारा शरीर सुडौल था। शाहदा रह-रहकर बड़ाई कर रही थी। दाढ़ी-मूँछ सब साफ़ थीं। एक धागीदार सूट पहने हुए थे। हाथ में कोई पुस्तक थी।

मैंने बैरिस्टर माहब के दूसरे पत्र भी पढ़े, और मुझे सब हाल खुल गया कि बैरिस्टर माहब एक बहुत ऊँचे और धनवान घराने के हैं। ब्याह की सारी बातचीत नै हो चुकी है। अन्त वाले पत्र से पता चलता है कि बस ब्याह की तिथि की कुछ उलझन बाकी है।

मेरी इच्छा हुई कि और पत्र पढ़ूँ, और विशेषकर आनरेग मजिस्ट्रेट साहब वाला, परन्तु शाहदा बोली—“अब और पत्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं। बस, यही ठीक है।”

मैंने कहा—“इनकी बातचीत की कुछ भनक मेरे कान तक पहुँच चुकी है। फिर देख तो लेने दें कि कहाँ तक बातचीत हो चुकी है।”

शाहदा ने भड़क कर कहा—“चल, जाने दें, हगमजादे की बात छोड़।”

मैंने बहुत-कुछ यत्न किया, किन्तु उसने एक न मानी। भंभट दूर करने के लिये सब चीजें जल्दी-जल्दी जहाँ की तहाँ रख दीं, और अलमारी का ताला बन्द करके मैंने मरदाने जीने का द्वार खोला। शाहदा के साथ चुपके से जैसे आई थी, वैसे ही कमरे में लौट गई। जहाँ से कुझी ली थी, उसी प्रकार रख दी। शाहदा से दूर तक वैरिस्टर साहब के बारे में बातचीत होती रही। शाहदा को इर्मीलिंग बुलाया भी था। शाम को वह अपने घर चली गई, मगर इतना बता गई कि मौसी की बातचीत से भी मालूम होता है कि तेरा व्याह अब तै हो चुका है, और तू बहुत शीघ्र लटकाई जावेगी।

[२]

इस बात को महीना-भर से अधिक हो गया। कभी-कभी तो माता-पिता की बातचीत चुपके से सुनकर उनके मन का भाव लेती थी, और कभी ऊपर जाकर अलमारी से नये आये हुए पत्र पढ़ती थी। मैं मन-ही-मन प्रसन्न थी कि मुझ-सा भाग्यवान भला कौन होगा। इतने में मालूम हुआ कि सब बातचीत ठीक होकर अन्त में बिगड़ना चाहती है।

अन्तिम पत्र से मालूम हुआ कि वैरिस्टर साहब के वालिद चाहते हैं कि विवाह और विदा शीघ्र ही हो जाय—दोनों एक साथ ही, और माना जी का कहना था कि वह इस समय केवल निम्नत की रूम करेंगी, और फिर पूरे वर्ष बाद विवाह और विदा करेंगी। उनका कहना था—'लड़की का दहेज इत्यादि धीरे-धीरे तैयार होगा।' यह भी कहती थी कि 'मेरी एक लड़की ही लड़की है, भली प्रकार देख-भाल के कामगी। यदि लड़का ठीक न हुआ, तो इस रोक-टोक की रूम को तोड़ दूँगी।' यह सारी बातें मैं चुपके से सुन चुकी थी, उधर तो ऐसे विचार, उधर वैरिस्टर साहब के पिता बहुत शीघ्रता कर रहे थे। उनका कहना था कि यदि उधर से ढाल-ढाल हुई, तो वह अपने पुत्र का विवाह दूसरे स्थान में कर लेंगे। वहाँ सब बातचीत ठीक हो चुकी है। मुझे यह न ज्ञात हुआ कि पिता जी ने इसका क्या उत्तर दिया। मैं तब तक में थी।

कोई मेरे मन से पूछे कि मेरी क्या हालत हुई: जिस दिन मैंने अच्चा जान और अम्मा जान का निर्णय सुना। पत्र लिख कर भेजा जा चुका था, यदि आपको ऐसी ही जल्दी है कि आप दूसरी जगह विवाह किये लेते हैं, तो बिस्मिल्लाह कीजिए, हम को अपनी कन्या भार नहीं है। यह पत्र लिख दिया गया। फिर उन दुष्ट आनरेरी मजिस्ट्रेट की बातचीत हुई कि मैं वहाँ भोंकी जाऊँगी। ईश्वर जाने इन आनरेरी मजिस्ट्रेट से मुझे क्यों इतनी घृणा थी। कुछ उनकी उम्र भी ऐसी न थी, मगर शाहदा ने कुछ ऐसे ढंगों से उनकी दशा यानी दाढ़ी इत्यादि की दैसी उड़ाई थी कि मेरे हृदय में उनके लिए तिल भर भी स्थान न था। मैं वगैरे अपने कमरे

में पड़ी विचार करती रही । इस बात को एक सप्ताह भी न हुआ था कि मैंने उसी प्रकार आलमारी का ताला खोल कर बैरिस्टर साहब के पिता का दाल का पत्र पढ़ा । ऐसा प्रतीत होता था कि यह पत्र उन्होंने पिता जी के अन्तिम पत्र पाने से पूर्व लिखा है कि बैरिस्टर साहब को किसी दूसरे स्थान पर जाना है, और राह में वह ऐसे ही होते हुए जायेंगे । यदि सब बातचीत आप को ठीक जैसी तो रोक-टोक भी कर दी जायगी । उसी दिन उस पत्र का उत्तर भी मैंने सुन लिया । उन्होंने लिख दिया था कि लड़के को तो मैं आप ही देखना चाहता हूँ । आप का घर है । जब जी चाहे, भेज दीजिए, लेकिन यह विचार हृदय से निकाल दीजिए कि एक वर्ष से पूर्ण विवाह हो जाय । माता जी ने भी इस उत्तर को ठीक समझा, और फिर उन्हीं आनरेरी मजिस्ट्रेट साहब की बातचीत मेरे कानों में पड़ी । इन सारी बातों से मेरा चित्त ऐसा प्रवर्तित कि मैंने माता जी से शाहदा के घर जाने को आज्ञा माँगी, और मन में तीन-चार दिन न लौटने की ठानकर चली गई ।

शाहदा के घर पहुँची, तो उसने देखते ही जान लिया कि कुछ दाल में काला है, और पूछा—“क्या तेरे बैरिस्टर ने किसी और को घर में बैठा लिया ?” मैं भला इसका क्या उत्तर देती ? सारी बातें आदि से अन्त तक कह गई कि वह कैसी शीघ्रता कर रहे हैं, और डरछुक हैं कि शीघ्र-से-शीघ्र विवाह हो जाय, मगर अस्माजान राजी नहीं होतीं । सारी बातें सुनकर और मुझे अनमना देखकर वह चंचल बोली—“वाह ! चट रोक-टोक और पट विवाह, भला यह कौन करेगा ? मगर एक बात है ।”

मैंने पूछा—“वह क्या ?”

शाहदा बोली—“वे तेरे लिए तरस रहे हैं। और यह चाल अच्छी है।”

मैंने कुढ़कर कहा—“तू चाल निकाल रही है, और हँसी कर रही है।”

“फिर क्या करूँ ?”—शाहदा ने कहा (क्योंकि बेचारी कर ही क्या सकती थी)।

मैंने कहा—“कोई सलाह करो, कोई राय दो। आओ दोनों मिलकर विचारें।”

“पगली कहीं की”—‘शाहदा बोली, मेरी नादानी पर सिद्धि न हुई है क्या ? सलाह क्या दूँ ? अच्छा; ला मुझे पता बता। मैं बैरिस्टर साहब को लिख भेजूँ कि वहाँ तो तुम इस छोकरी पर तुले हो, और यहाँ यह तुम पर रीझी है। आकर तुझे भगा ले जायँ ?’

“भाड़ में जाय तू, और चूल्हे में जाय तेरी सलाह।” मैंने कहा—“क्या इसीलिए मैं आई थी ? ले जाती हूँ।” यह कहकर मैं उठी।

“तेरे बैरिस्टर की ऐसी-तैसी।” शाहदा ने कहा, और मेरा हाथ पकड़कर बोली—“जाती कहाँ है ?” न शादी, न विवाह। दूल्हा का दुखड़ा लगा रोने। तुझे क्या ? कोई न कोई माई का लाल आकर तुझे ले ही जायगा। चल, दूसरी बातें कर।”

यह कह कर शाहदा ने मुझे बैठा लिया, और मैं भी हँसने लगी। दूसरी बातें होने लगीं, मगर मेरे मन में तो व्यथा ही और थी, और दुखी थी। घूम-फिर कर फिर वही बातें होने लगीं। शाहदा ने, स्नेह-वश जो कुछ कर सकती थी, किया—

यानी मेरे लिए परमात्मा से प्रार्थना की, और आनरेरी मजिस्ट्रेट साहब को खूब कांसा। इससे अधिक वह बेचारी और कर ही क्या सकती थी। “मैं खुदा को इबादन के बाद तेरे लिए उनसे कहा करूँगा, और तू भा प्रनिदिन ऐसा ही करियो—” शाहदा ने कहा। इससे अधिक न वह कर सकती थी, न मैं।

मेरा मन घर से कुछ ऐसा उबाट सा हो गया था कि दो बार आदमी बुलाने आया, और मैं न गया। चौथे दिन मैंने शाहदा से कहा—“अब शायद पत्र का उत्तर आया होगा!” और मैं भोजन करके ऐसे समय जाऊँगा; जब सब सो गये हों और तुरन्त ही मुझे देखने का मौका मिल जाय।”

विदा होते समय मैं इस भाँति जा रही थी, जैसे कोई मनुष्य अपने भाग्य का निर्णय सुनने जा रहा हो। मेरी दशा अजीब आशा और निराशाजनक थी कि जाने बैरिस्टर साहब के पिता ने उस पत्र में स्वीकृति दे दी होगी कि हम साल भर बाद विवाह करने को तैयार हैं, या नामंजूर कर दिया होगा। मैं रह-रहकर विचार रही थी। विदा होते समय मैंने अपनी प्यारी सहेली की गरदन में बाहें डालकर खूब दवाया, न मालूम क्यों मेरे नेत्रों में जल भर आया। शाहदा ने गम्भीर होकर कहा—“वहन, ईश्वर उस दुष्ट के हाथ से तेरी रक्षा करे। तू दुवा कर, अच्छा।”

मैंने चुपके से कहा—“अच्छा।”

[३]

शाहदा के घर से जो आयी, तो जैसा चाहती थी, वैसा ही सन्नाटा था। माता जी सो रही थीं, और पिता जी कचहरी जा

चुके थे। मैंने धीरे से भाँककर इधर-उधर देखा, कोई न था। धीरे में द्वार बन्द किया, और भागकर मरदाने जीने का द्वार भी बन्द कर दिया। अब सोवे कमरे में पहुँची। वहाँ जो कुछ देखा, उससे अवाक् रह गयी। क्या देखती हूँ कि बड़ा-सा चमड़े का ढ़ङ्क खुला पड़ा है। पास को कुरसी पर और ढ़ङ्क में कपड़ों के ऊपर भाँति-भाँति की वस्तुओं की दुकान-सी लगी है। मैंने मन-ही-मन सोचा, भला, यह कौन है, जो यों सामान छोड़ गया है। क्या कहूँ, मेरे आगे कैसी दूकान लगी हुई थी, और कैसी-कैसी वस्तुएँ रखी थीं कि मैं सब भूल गयी, और ध्यान से उन्हें देखने लगी। भाँति भाँति की डिब्बी और विलायती बक्स थे, जो मैंने कभी न देखे थे। मैंने पहले शीघ्रता से एक सुनहरा गोल डिब्बा उठा लिया। मैं इसकी प्रशंसा कर रही थी। यह गिन्नी के सोने का डिब्बा था, और उसपर सच्ची सीप का बढ़िया काम था। ऊदी-ऊदी सीप के टुकड़े सातों रंग में जगमगा रहे थे, और सारे जोड़ों पर विदेशी कुन्दन का काम हो रहा था। ढकना तो देखने ही योग्य था। उसमें मोती जड़े थे, और समुद्री घोंघों की बहुत-सी नन्हीं-नन्ही कनारे ऐसे सुन्दर ढङ्ग से सोने में जड़ी थीं कि मैं देखकर अचम्भे में पड़ गयी। मैंने उसे खोलकर देखा, तो भीतर पाउडर लगाने का एक नन्हा-सा पफ रखा हुआ था और उसके भीतर लाल रंग का पाउडर। मैंने एक निकालकर उसके नरम-नरम रोएँ देखे, जिनपर धूल की तरह पाउडर के महीन-महीन कण छा रहे थे। यह देखने को कि यह कितना नरम है, मैंने उसको अपने गाल पर धीरे-धीरे फेरा; फिर उसे जैसे का तैसा रख दिया। मुझे यह खयाल भी न हुआ कि मेरे गाल पर लाल पाउडर जम गया है। जैसे ही मैंने ढब्बा रखा,

मेरी निगाह एक थैली पर पड़ी। यह एक हरी मखमल की थैली थी, जिस पर भाँति-भाँति के सुनहरे चित्र बने हुए थे। मैंने उसे उठाया, तो मेरे अचरज का ठिकाना न रहा; क्योंकि वास्तव में यह विदेशी स्वर का थैली था, जो मखमल से भी अधिक नरम और सुन्दर थी। मैंने ध्यान से सुनहरे काम को देखा। खोलकर जो देखा ता भातर बालों में करने के दो चाँदी के ब्रश थे, और एक इन्हीं के जोड़ का कंवा था। मैंने उसे भी रख दिया, और अनेक छोटी-छोटी सुन्दर डिब्बियाँ देखी। किसी में सेफ्टी-पिन, किसी में सुन्दर-सा ब्रश और किसी में फूल था। इसी प्रकार भाँति-भाँति के ब्रश और ब्लाउज-पिन इत्यादि थे। दो-तीन डिब्बियाँ ऐसी थीं जिनकी अजीब बनावट थी— एक किताब की-सी थी और एक क्रिकेट के बल्ले की भाँति। बहुत-सी ऐसी थीं जो मुझसे किसी प्रकार न खुलीं। सिगरेट केस, दियासलाई का बक्स और भी बहुत-सी वस्तुएँ थीं मगर सब देखने-योग्य। मैं उन्हें देख रही थी कि एक मखमल का डिब्बा बक्स के कोने में रेशमी रूमालों में दबा हुआ दीख पड़ा। मैंने उसे निकाला। खोलकर देखा, तो बहुत-से नन्हें-नन्हें नाखून काटने और घिसने के औजार निकले। इन सब में सीप के छोटे-छोटे सुन्दर दस्ते जड़े हुए थे और ढकने में एक छोटा-सा दर्पण जड़ा था। मैंने उसे जैसे ही उसकी जगह रखा, एक और मखमली डिब्बा मेरे हाथ लगा। उसे जो मैंने निकाला और खोला तो उसके भीतर हरे रंग का एक फाउन्टेन पेन निकला, जिस पर सोने की जाली का खोल चढ़ा था। मैंने उसे भी रख दिया। इधर-उधर देखने लगी। एक छोटी-सी सुनहरे रंग की डिब्बी दीख पड़ी। उसे खोलना चाहा, मगर वह किसी भाँति न खुली। मैं उसे खोल रही थी

कि एक लकड़ी के बक्स का कोना दीख पड़ा । उसे फौरन ट्रंक से बाहर निकाला । एक भारी-सा सुन्दर बक्स था । उसे जो मैंने खोला, तो मेरे अचरज का ठिकाना न रहा । उसके अंदर एक साफ़-सुन्दर बिल्लौरी इनरूदान निकला । यह कोई बालिशत-भर लम्बा और इसी के अनुसार चौड़ा था । मैंने उसे निकालकर ध्यान से देखा । लकड़ी का बक्स, जिसमें यह बन्द था, अलग रख दिया था । विचित्र वस्तु थी । उसके भीतर की सारी वस्तुएँ बाहर से दीख पड़ती थीं, उसके भीतर चौबीस छोटी-छोटी विदेशी इत्र की कलमें थीं, जिनके भाँति-भाँति के रंग बिल्लौर के पार होकर अजब समा दिखा रहे थे । मैं उसे चारों ओर से देखती रही, और खोलना चाहा । जहाँ भी जोड़ या बटन दीख पड़े, दबाये; किंतु न खुला । मैं उसे देख ही रही थी कि मेरी दृष्टि एक चित्र के कोने पर पड़ी, जो ट्रंक के तनिक नीचे को रखा था । मैं अब उसे तो भूल-सी गयी, और चित्र निकाल लिया । उसके साथ ही एक मखमली डिब्बी रूमाल और टाइयों में उलझती हुई चली आई और खुल गई । क्या देखती हूँ कि उसमें एक सुन्दर अँगूठी जगमगा रही है । तुरन्त चित्र को छोड़कर मैंने उस डिब्बी को उठा लिया, और अँगूठी निकालकर देखने लगी । उसके बीच में एक नीला नगीना था, और असपास सफेद-सफेद हीरे जड़े हुए थे, जिनपर निगाह ही न जमती थी । मैंने इस सुन्दर अँगूठी को ध्यान से देखा, और अपनी उँगलियों में डालना शुरू किया । किसी में तंग होती थी और किसी में ढीली; किन्तु सीधे हाथ की ब्रिगुनी के पासवाली उँगली में मैंने उसे किसी-न-किसी भाँति पहन ही तो लिया । हाथ ऊँचा करके उसके नगों की भड़क देखने लगी । मैं उसे देख-भालकर डिब्बी में रखने को उतारने लगी, तब

देखा कि वह फँस गयी है। मेरे बायें हाथ में वह बिल्लौरवाला इतरदान था। मैं उसे रखने को हुई, जिससे उँगली में फँसी हुई अँगूठी उतारूँ कि अचानक मेरी दृष्टि उस चित्र पर पड़ी, जो सामने रखा था, और जिसे देखने की मेरी सर्व प्रथम इच्छा हुई थी। उस पर एक हवा-सा महीन कागज था, जिसकी सफेदी में होकर चित्र के रंग झलक रहे थे। मैं इतरदान को रखना भूल गयी, और तुरन्त ही चित्र को उठा लिया। कागज उठाकर जो देखा, तो मालूम हुआ कि यह सारी सामग्री बैरिस्टर साहब की है। यह उन्हीं का चित्र था, और किसी विदेशी दूकान का उतारा हुआ रंगीन चित्र था। मैं बड़े ध्यान से देख रही थी और सोच रही थी कि यदि यह असली चित्र है तो जरूर बैरिस्टर साहब बहुत ही सुन्दर पुरुष हैं। मुँह का रंग फीका गुलाबी था ! काले बाल और आड़ी माँग निकली थी। मुँह, आँख, नाक ऐसी साफ़ उतरी हुई थी कि मुझे भ्रम था कि मैं सुन्दर हूँ, या वह। कोट की धारियाँ चालाक चित्रकार ने असली रंग में इस भाँति दिखायी थीं कि हर एक तागा अपने रंग में जैसा का तैसा दीख पड़ता था। मैं उस चित्र के देखने में बिलकुल लीन थी। देखते-देखते हवा के कारण वह कागज मेरे काम में बाधा डालने लगा। मैंने झुँझलाकर चित्र को अलग किया। मेरा बायाँ हाथ घिरा ही हुआ था। इसमें वही बिल्लौरी इतरदान था। फिर उसी प्रकार कागज उड़कर आया और चित्र को ढक लिया। मैंने झटककर फिर अलग करना चाहा, किन्तु वह चिपक-सा गया, और अलग न हुआ। मैंने मुँह से फूँक मारी। फिर भी न हटा, तो मैंने 'उँह' करके बाएँ हाथ की उँगली से उसे हटाया, मगर ऐसा करने में वह बिल्लौरी इतरदान, भारी तो वैसे भी था, हाथ से फिसलकर

गिर पड़ा और 'भन्न' शब्द के साथ पक्के कर्श पर चूर-चूर हो गया !

मैं धक्के से हो गयी, और मुँह कुम्हला गया । चित्र को एक ओर फेंककर तुरन्त इतरदान के टूटे टुकड़े उठा-उठाकर मिलाने लगी कि पास ही से किसी ने कोमल स्वर में कहा—“कष्ट न कीजिये, आप ही का था ।” आँख जो उठायी, तो सामने बैरिस्टर साहब को खड़ा पाया । यह कैसा अचम्भा ! इससे तो मैं अवाक रह गयी कि ये यहाँ कैसे आ गये । दो-तीन सेकंड तो जान न सकी, कि क्या करूँ । जल्दी से मैंने इतरदान के टूटे हुए टुकड़े फेंक दिये और दोनों हाथों से मुँह छिपाकर द्वार की ओट में हो गयी ।

[४]

मेरी हालत उस समय काबिल रहम थी । बाँसों मन उछल रहा था । यह पहला ही मौका था, जो मैं अकेली एक अनजान आदमी के सामने थी, और उसपर भी चोरी करते पकड़ी गयी । सारा ट्रंक कुरेदकर फेंक दिया था, और फिर इतरदान फोड़ ही डाला । अँगूठी भी उँगली में पहने थी ।

ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे थी । सारा शरीर काँप रहा था । जब कुछ हवास ठीक हुआ, तो अँगूठी का खयाल आया । शीघ्रता से उसे उतारने लगी । भाली-भाँति से घुमाया । सब तरह उँगली को दबाया और अँगूठी को खींचा; लेकिन जल्दी में वह और भी न उतरी । जितनी देर हो रही थी; मैं उतना ही अधिक घबरा रही थी । पल-पल भारी था । मैं काँपते हाथों से सब प्रकार अँगूठी उतारने की कोशिश कर रही थी, किन्तु वह न उतरती थी । क्रोध में आकर मैंने उँगली मरोड़ डाली, किन्तु इससे क्या होता है ।

मैं तन-बदन से अँगूठी उतारने का उद्योग कर रही थी कि इतने में बैरिस्टर साहब बोले—“शुक्र है कि आपने अँगूठी पसन्द तो की।”

यह सुनकर मेरे सारे शरीर में पसीना आ गया और गोया मर मिटी। मैंने मन-ही-मन कहा कि मैं मुँह छिपाकर जो भागी, तो शायद अँगूठी उन्होंने देख ली, और था भी ऐसा ही। इस बात ने मुझपर बिजली गिरा दी। मैं यह सुनकर और भी शीघ्रता-पूर्वक उसे उतारने लगी, पर वह उँगली में बुरी तरह फँसी थी और किसी प्रकार न उतरती थी। मेरा हृदय बड़ी तेजी से धड़क रहा था और मैं शरम से पानी-पानी हुई जाती थी। सोच में पड़ी थी कि कैसे यह निगोड़ी अँगूठी उतरे।

इतने में बैरिस्टर साहब आड़ से ही बोले—“इसमें से यदि और कोई चीज पसन्द हो, तो ले लीजिये।” मैंने यह सुनकर अपनी उँगली मरोड़ ही तो डाली कि तेरी यही सजा है, लेकिन उससे क्या होता था ! मैं बहुत हैरान और दुखी थी। शर्म से पानी-पानी हुई जाती थी।

इतने में बैरिस्टर साहब फिर बोले—“चूँकि यह महज वक्त की बात है कि मुझे अपनी मन्सूबा बीबी के साथ बात-चीत करने का और भेंट का अवसर मिला है, और मैं ऐसे मौके को कैसे हाथ से छोऊँ।”

यह कहकर वह द्वार से होकर सामने आ खड़े हुए। अब मैं घिर गयी। शर्म और हया से जमीन में गड़-सी गयी, और सर झुकाकर दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया। फिर कोने की ओर मुड़ी। किवाड़ों में घुसी जाती थी। मेरी ऐसी बुरी हालत देखकर बैरिस्टर साहब भी लजा गये, और उन्होंने कहा—

“मैं ठिठाई की क्षमा चाहता हूँ, किन्तु...” यह कह उन्होंने पलंग की चादर खींचकर मेरे ऊपर डाल दी, और आप कमरे से बाहर निकलकर बोले—“आप कृपाकर मसहरी पर बैठ जायँ, और विश्वास रखें कि मैं अब अन्दर न आऊँगा, पर इस शर्त पर कि आप मेरी चन्द बातों का जवाब दे दें।”

मैंने इसी को बहुत समझा, और मसहरी पर चादर में लिपट कर बैठ गयी।

वैरिस्टर साहब बोले—“आप मेरी ठिठाई पर क्रोधित तो नहीं हैं।”

मैं चुपचाप पहले की भाँति अँगूठी उतारती रही और कुछ न बोली। और शीघ्रता से अँगूठी उतारने का उद्योग करने लगी कि अँगूठी जल्द उतर आवे।

वैरिस्टर साहब ने फिर कहा—“शीघ्र जवाब दीजिये, शीघ्र।” मैं फिर भी चुप रही, तो उन्होंने कहा—“आप उत्तर नहीं देतीं, तो मैं आता हूँ।”

मैं घबरा गयी, और निरुपाय होकर धीरे से बोली—“जी नहीं।” मैं अब भी बराबर अँगूठी उतारने का उद्योग कर रही थी।

वैरिस्टर साहब बोले—“धन्यवाद, यह अँगूठी तो आपको भाती है।”

“या खुदा !” मैंने दुखी होकर कहा—“इससे तो मैं मर जाऊँ तो अच्छा है।” यह कहकर मैं पागलों की भाँति उँगली नोचने लगी। क्या कहूँ, मेरी क्या दशा थी। अगर बस चलता, तो उँगली काटकर फेंक देती। मैंने उसका कुछ उत्तर न दिया। चुप देखकर वैरिस्टर साहब ने फिर पहले वाली बात

दुहायी। मैं अपने आपको कोस रही थी कि उसका क्या उत्तर दूँ। यदि कहती हूँ कि अच्छी है, तो शर्म की बात है, और यदि कहूँ कि अच्छी नहीं, तो शोभा नहीं देता, और फिर यह कह न बैठें, तो फिर पहनी क्यों ? मैं चुप रही और कुछ न कहा।

तनिक देर बैठकर बैरिस्टर साहब फिर बोले—“इतरदान तो आपको ऐसे पसन्द आया कि आपने उसे तोड़ ही डाला, और मेरा सारा परिश्रम सफल हुआ; मगर अँगूठी के लिए आप कुछ और कह दें, ताकि उसकी भी कीमत वसूल हो जाय।”

यह सुनकर मारे शर्म और क्रोध से मेरी आँखों में आँसू आ गये। सारा क्रोध उँगली पर ही उतार रही थी, जैसे इसी ने इतरदान फोड़ डाला हो। मैं इसके टूटने पर बहुत दुखी थी, मेरे मुँह से कुछ न निकलता था। जब मैं कुछ न बोली, तो बैरिस्टर साहब ने कहा—“आप कुछ उत्तर ही नहीं देती। मैं अब आता हूँ।”

मैं घबरा गयी कि सचमुच न आ जायँ, और भट बोली—“भला, इसका क्या उत्तर दूँ। आपका इतरदान मुझसे टूट गया, बड़ा दुख है ...”

बात काटकर बैरिस्टर साहब ने कहा—“वाह ! वह इतरदान तो आप ही का था। आपने तोड़ डाला, अच्छा किया। मेरे विचार से अँगूठी भी आपको अच्छी लगी, और भाग्यवश आप उसे अब तक उँगली में पहनने की कृपा कर रही हैं।”

मैं अब क्या कहूँ, जो दशा मेरी इस बात को सुनकर हुई। मन-ही-मन मैंने कहा, ठीक है, अच्छी अँगूठी पहन रही हूँ।

अँगूठी क्या है कि गले को फाँसी हो गयी, जो ऐसी ठीक आयी कि उतरने का नाम नहीं लेती ! मैंने मन में कहा कि यदि यह दुष्ट मेरी उँगली में न फँस गयी होती, तो काहे को मैं ऐसी बेशर्म बनती और वहाँ यों कहते कि आप पहने हैं । ईश्वर गवाह है कि मैं इस निगोड़ी अँगूठी के उतारने के लिए क्या-क्या जतन कर चुकी थी और अब तक कर रही थी । पर वह ऐसी फँसी थी कि टस-से-मस न हुई । मैं चुप रही, कुछ न कहा, लेकिन अँगूठी अब भी उतारने में लगी थी ।

बैरिस्टर साहब ने मुझे चुप देखकर कहा—“आप फिर उत्तर देने में देरी कर रही हैं । ‘अच्छी है, या बुरी’ सिर्फ दो बातों में से एक कह दीजिये, नहीं तो जान रखिये कि मैं आपके सामने आने का बहाना ढूँढ़ रहा हूँ ।”

मैंने फिर क्रोध में उँगली नोच डाली, और पीछा छुड़ाने की नियत से कह दिया—“अच्छी है ।”

“जी नहीं,” बैरिस्टर साहब बोले—“अच्छी है और आपको नहीं भाई, तो किस काम की ? फिर अच्छी कहकर तो दूकानदार ने ही दी थी और यह मैं पूछता भी नहीं हूँ । आप यह कहिये कि आपको अच्छी लगी या नहीं ? नहीं तो मैं आता हूँ ।”

मैंने मन में सोचा, यह अवश्य घुस आयँगे, फिर भक मार के कहना ही पड़ेगा, इसलिये कह दिया—“अच्छी लगी ।” इनना कहकर मैं दाँत पीसकर फिर उँगली नोचने लगी ।

“धन्यवाद,”—बैरिस्टर साहब बोले—“हज़ार बार धन्यवाद ! अब आप जा सकती हैं । एक बात और कहना चाहता हूँ कि यह अँगूठी तो जरूर आप ही की है, और आप पहनकर अब उतारना भी न चाहती होंगी, लेकिन मुझे खेदवश

कहना पड़ता है कि सन्ध्या को रीति के अनुसार और वस्तुओं के साथ-साथ मुझे यह अँगूठी भी भेजनी पड़ेगी, इसलिए अगर आप बुरा न मानें, तो इस समय इसे यहीं छोड़ जाइये। मैं अलग हुआ जाता हूँ। खुदा खैर करे।” यह कहकर वह हट गये, और मैंने उनके जाने को आहट सुनी। वह सामने के गुसलखाने में चले गये। वास्तव में वह गुसलखाने में कङ्का इत्यादि कर रहे होंगे, जब मैं अचानक आकर फँस गयी। अब मैं बड़े फेर में पड़ी। उँगली से अँगूठी उतारने के लिए बड़ा परिश्रम किया। घबराहट और जल्दी से मैं पागल-सी हो रही थी, क्योंकि बिना अँगूठी उतारे मैं घर भी न लौट सकती थी। दुखित होकर मैंने हाथ की बजाय दाँतों से भी सहायता ली, और उँगली भँभोड़ खायी, मगर वह कम्बख्त अँगूठी तो जान पर आ बनी थी—किसी भाँति न उतरी! मैंने दुखित होकर अपना कर्म ठोका और रोकर बोली—“या अल्लाह! कैसे संकट में पड़ी हूँ। यह दुष्ट तो मेरे प्राण लिए लेती है।”

बैरिस्टर साहब गुसलखाने में खड़े-खड़े थक गये और मैं जहाँ-की-तहाँ ही थी। वह लौट आये और बोले—“माफ कीजिये, मुझे नहीं मालूम था कि आप अँगूठी नहीं उतारना चाहती और इस शर्त पर जाने को भी राजी नहीं हैं; मगर यह रस्म अँगूठी से ही पूरी की जा सकती है इसलिए मैं खाली डिब्बी रख दूँगा और कहला दूँगा कि अँगूठी आपके पास है।”—यह कहकर और तनिक ठहर कर बोले—“वैसे तो कोई बात न थी, मगर आभाग्यवश आपके पिता इसे देख चुके हैं।”

मैं अपनी उँगली मरोड़ रही थी, किन्तु यह सुनकर घबरा गयी। यह तो दिल्लगी थी कि वह कह देंगे कि अँगूठी मेरे

पास है, पर मैं यह विचार रही थी कि जब पिता जी इस अंगूठी को देख चुके हैं, तो बैरिस्टर साहब इस विषय में क्या बहाना करेंगे ।

इस बीच में बैरिस्टर साहब ने यह सोचा कि मैं शायद इसलिए नहीं जाती कि वह सामने गुसलखाने से मुझे जाते हुए देख न लें, इसलिए उन्होंने तुरन्त कहा—“अच्छा, अब मैं समझा, मैं अब गुसलखाने से हटकर जीने में खड़ा हुआ जाता हूँ ।”

मैं अब बहुत दुखी और लाचार थी कि कैसे इस ना-समझी को जल्द-से-जल्द दूर करके असली कारण समझा दूँ । मेरी बुद्धि काम न करती थी कि या खुदा, क्या करूँ ! न जाने को राह, न ठहरने को जगह—मेरी यह दशा थी । और इधर बैरिस्टर साहब न जाने क्या सोच रहे थे । जब मैंने देखा कि अब वह जीने में चले ही जायँगे, तो ‘मरता क्या न करता’ वाली मसल करके, न मालूम कैसे मैंने धीरे से कह दिया—“यह नहीं उतरती ।”

इधर तो मेरी यह दशा और बैरिस्टर साहब यह सुनकर फूले न समाते थे । हँसकर बड़ी खुशी में, जैसे कोई अपनों से कहता है, बोले—“अच्छा, यह बात है ! खुदा करे न उतरे ।”

भला, मैं इसका क्या उत्तर देती । चुप रही । बस भर उद्योग करती रही कि अंगूठी उतर आवे, लेकिन जब थोड़ी देर हुई, तो उन्होंने कहा—“यदि आप बुरा न मानें तो मैं उतार दूँ ।”

‘या खुदा !’ मैंने मन-ही-मन कहा । अब मैं क्या करूँ । मैं तो न उतरवाऊँगी । यह निश्चय करके मैं फिर उद्योग

करने लगी, किन्तु खुदा का नाम लो ! वह भला काहे को उतरती ? इतने में बैरिस्टर साहब ने फिर कहा—“वह आपके उतारे न उतरेगी। कोई बात नहीं, मैं बाहर से ही उतार दूँगा।”

मैं अब परेशान हो गयी थी, और इस संकट से किसी-न किसी तरह पीछा छुड़ाना चाहती थी, इस वास्ते मैंने निरुपाय होकर मसहरी पर बैठकर हाथ दरवाजे से बाहर कर दिया।

बैरिस्टर साहब ने उँगली हाथ में लेकर कहा—“शाबाश इस अँगूठी को ! क्यों साहब, तारीफ तो आप भी करती होंगी कि मैं कैसी नाप तोलकर ठीक अँगूठी लाया हूँ ? वह अँगूठी ही भला कैसी, जो यह लुप्त न दिखावे।”

मैं लाचार थी और सब चुपचाप सुन रही थी, मगर इस बात पर मुझे इस दशा में भी हँसी आ गयी कि देखो तो दुष्ट किस नाप की अँगूठी आ गयी है कि मुझे मुसीबत में डाल दिया। उँगली को उन्होंने खूब इधर-उधर से देखकर और दबाकर कहा—“यह तो सूज गयी है।” यह कहकर वह उतारने का उद्योग करने लगे।

जल्दी से बोले—“अरे, माफ कीजियेगा। क्या आप बता सकती हैं कि इस बेचारी उँगली पर दाँत किसने पैनाये हैं ?”

मैंने तुरन्त शर्माकर हाथ भीतर खींच लिया।

“देखूँ, देखूँ,”—बैरिस्टर साहब ने कहा—“अब मैं कुछ न कहूँगा।”

लाचारी फिर हाथ बढ़ाना पड़ा और वह अँगूठी उतारने लगे। उन्होंने खूब परिश्रम किया, खूब दबाया और वह भी ऐसा कि मारे कष्ट के मेरी बुरी दशा थी; लेकिन वह प्राण

लेवा अँगूठी न उतरी। वह बेचारे सब प्रकार से उद्योग कर रहे थे कि इतने में किसी ने मरदाने जीने का द्वार खटखटाया। बैरिस्टर साहब यह कहकर—“आज शाम न सही, कल शाम”—गुसलखाने की तरफ चले और फिरकर कहा—“कृपा कर जैसे भी हो, यह अँगूठी मेरे पास अवश्य भिजवा देना।” जाते-जाते वह एक और वाक्य-वाण मुझपर छोड़ गये। वह यह कि “पाउडर लगाने की तो आपको कोई आवश्यकता न थी।” मैं मारे शर्म से मर गयी। मेरे एक गाल पर लाल पाउडर लगा था, जो उन्होंने देख लिया था।

इधर वह गुसलखाने में गये, उधर मैं भागी और सीधे कमरे में आकर साँस ली। दर्पण उठाकर जो देखा, तो एक गाल में लाल पाउडर रंग दिखा रहा था। अपने को कोसती गयी और पोंछती गयी। इसके बाद मैंने उँगली पर एक कपड़ा लपेटा की अँगूठी छिप जाय और बहाना कर दूँ कि चोट आ गयी है।

[५]

खूब बहाना चला। माता जी ने चोट या घाव आदि के विषय में विशेष छानबीन न की। मैंने भी सर में पीड़ा का बहाना कर दिया और वह मजदूरनी से यह कहकर कि ‘रहने दे, उसका दूल्हा आया है, शर्म से बाहर नहीं आती’, चुप हो रहीं।

उन्हें या मजदूरनी को भला यह पता कब था कि यह दुष्ट तो उससे मिल भी आयी है और केवल मिली ही नहीं, उसकी सारी चीजें भी बिगाड़ आयी है।

तीसरे पहर का समय था। मैं घड़ी-घड़ी शाहदा की बात जोह रही थी। उसे मैंने बुलाया, तो उसने नाहीं कर दी,

क्योंकि आज ही तो मैं उसके घर से आयी थी। मैंने फिर उसे एक पत्र लिखा—“बहन, जैसे भी हो, शीघ्र आ। नहीं तो मेरे प्राणों की रक्षा नहीं।” इस पत्र के उत्तर का आसरा बड़ी बेचैनी से कर रही थी।

मैं जानती थी कि वह जरूर आयगी। वह आ गयी और मैं उसे लेने तक न गयी। माता जी से उसे मालूम हुआ कि बैरिस्टर साहब आये हैं। उसकी घबराहट दूर हो गयी और हँसती हुई आयी। आते ही न सलाम, न जुहार, बोली—“अरी दुष्ट, तनिक बाहर आकर मिल तो जा।”

“मैं तो मिल भी आयी।”—मैंने मुसकराकर कहा—“और विश्वास न हो, तो यह देख।”—यह कहकर मैंने उँगली खोलकर दिखा दी।

“यह बात !”—शाहदा ने आश्चर्य से कहा।

मैंने आदि से अन्त तक सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दी। शाहदा मेरा मुँह ताकती रह गयी। फिर बोली—“यह तो बड़ा मजेदार मिलन हुआ।”—यह कहकर वह चुटकियाँ लेने को आगे बढ़ी।

मैंने कहा—“मिलन गया चूल्हे में। अब इस निगोड़ी अँगूठी को किसी तरह उतार। चाहे उँगली कटे या रहे, मगर इसे तू उतार दे, इसीलिए मैंने तुझे बुलाया भी है।”

शाहदा ने कहा—“खैर, उतर तो यह भी आयेगी, मगर इसे देने क्या तू जायगी ?”

अब मैं भी सोच में पड़ी कि यह जायगी कैसे। ऐसे पहुँचना चाहिए कि किसी को खबर न हो। कुछ सोचकर शाहदा बोली—“मैं पान में रखकर भेज दूँगी। मजदूरनी से

कहला दूँगी कि यह पान उन्हीं के हाथ में देना और कह देना कि तुम्हारी साली ने भेजा है।”

यह तदबीर मुझे भी पसन्द आयी; क्योंकि माता जी यही समझतीं कि पान में कुछ ठट्ठा किया होगा, जो नयी बात न थी।

जब यह सब ठीक कर चुकी, तो शाहदा ने अँगूठी उतारने की कोशिश शुरू की। बहुत शीघ्र मालूम हो गया कि इसका उतारना उतना सहज नहीं है। तेल और साबुन की मालिश की गयी, मगर कुछ न हुआ। जब सब जतन करके हार गयी, तब शाहदा भी घबरायी और कहने लगी—“उँगली सूज गयी। यह तो खुदा ही उतारे, तो उतरे।” घण्टों उसमें मूँड़ मारा गया। बोराली सीने का बड़ा सूजा लाया गया। छोटी-बड़ी कैचियाँ आयीं। मोचना लाया गया। काग निकालने का पेंच और मशीन का पेंचकश। जो कुछ औजार मिला, लाया गया और उससे काम लिया गया; मगर सब बेकार !

रात को उसी सोच में मुझसे खाना भी न खाया गया। थककर मैं बैठ रही और शाहदा से कहा—“खुदा के लिए तू ही कुछ कर।” रात को गर्म पानी में उँगली डुबोयी गयी और सब प्रकार डोरे डालकर खींची गयी, मगर कुछ न हुआ ! रह-रहकर मुझे सोच आता था और शाहदा जब जतन करते-करते थक जाती, तो मैं कहती—“खुदा के लिए मुझे तो इस अँगूठी की मुसीबत से बचा।”

“फिर तू आँख लड़ाने गयी ही क्यों थी ?”—शाहदा खुद तंग आकर बोली।

“खुदा की मार पड़े तुम्हारी इस इश्कबाजी पर। मैं तो

इस संकट में फँसी हूँ और तुम्हें यह हँसी सूझी है ?”—मैंने मुँह फुलाकर कहा ।

“यह इश्कवाजो नहीं तो क्या है ? गयी वहाँ और शौक से भिस्सी और पाउडर लगाया, फिर दुल्हा के चाँचले में पड़कर अँगूठी भी पहन ली”—शाहदा ने कहा—“अब इस रमिकता का मजा भी चखो । खूब गुलझरें उड़ाये और अब……”

मैंने अपने हाथ से उसका मुँह बन्द करके कहा—“खुदा के लिए तनिक धीरे बोलो ।”

“ला, कैची से अँगूठी कतर दूँ”—शाहदा ने कहा—“वैसे यह नहीं उतरेगी ।”

मैंने कहा—“न बहन, कतरने न दूँगी । न-जाने कितनी कीमत की अँगूठी है । एक तो मैं शामत की मारी इतरदान तोड़ आयी और इसे भी काट डालूँ !”

“भला, मजाल है, जो वह चूँ भी कर जायँ । अभी कहला भेजूँ, जाओ जी अपना रास्ता नापो, हमारी लड़की भारू नहीं, कहीं और जाकर देखो ।”—यह कहकर शाहदा ने कैची ले ली और मुझसे कहा—“इधर लाओ, इधर ।”

“नहीं, नहीं”—“मैंने कहा—“पेना न करो ।” फिर वही जतन होने लगे । यहाँ तक कि इस अँगूठी ने रात भर सोने न दिया । रात भर उँगली पर भाँति-भाँति से खींची गयी । कभी मैं अपने को खूब-खूब काँसती और कभी अँगूठी को खरी-खाटी सुनाती और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करती कि ईश्वर तू ही सहाय हो ।

तंग आकर प्रातःकाल मैंने शाहदा से कहा—“अब मेरी उँगली वैसे भी मारे पीड़ा के कड़ो पड़ गयी है । तू कट दे ।”

शाहदा ने कैची से अँगूठी काटनी चाही । आशा थी कि

सोना है, महुलियत से कट जायगा, मगर वह गिनी का कड़ा सोना था और तनिक देर में सालूम हो गया कि उसका काटना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। भाँति-भाँति के औजार काम में लाये गये, किन्तु एक न चली। अब तो मैं भी घबरायी और ऐसी दशा बिगड़ी कि शाहदा से बोली—“यदि संख्या मिल जाय, तो खाकर अभी मर जाऊँ।”

अब शाहदा भी सोच में पड़ी और उसने बहुत कुछ विचार करने के बाद मुझसे धीरे से कहा—“अब बस एक ही उपाय है।”

वह क्या ?”—मैंने शीघ्रतापूर्वक कहा—“बताओ।”

“वह यह है,” शाहदा ने मुसकराकर कहा—“वह यह कि तुम ऊपर जाओ और अपने चहेते से निकलवाओ। नहीं तो शाम तक अवश्य पकड़ी जाओगी और नाक-चोटी कटेगी।”

“मैं तो कदापि न जाऊँगी,”—मैंने कहा—“चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय।”

“ये बातें ! और वह भी हम से !” शाहदा ने कहा—“तनिक दिल से तो पूछ।”

मैंने सच बात कही—“ईश्वर की सोगन्द” मैं किसी प्रकार जाना नहीं चाहती। मैं इस समय इस निगोड़ी अँगूठी के मारे जीवन से निराश हो रही हूँ।”

शाहदा बोली—“मैं हँसी नहीं करती, तुम्हें अच्छा लगे या न लगे, जाना अवश्य पड़ेगा; क्योंकि घर के किमी भी औजार से यह असम्भव है कि हम या तुम उसे उतार या काट सकें।”

मैं चुप बैठी और सोचती रही। शाहदा ने धीरे-धीरे सब ऊँच-नीच सुझाया कि कोई हर्ज नहीं, और फिर इस दशा में कि वे आप ही इतने लजीले और शमीले हैं। मरना क्या न करता। कोई और जतन ही न था। मैं मजबूर राजी हो गयी।

[६]

जब सन्नाटा हो गया, तो ऊपर पहुँची। शाहदा भी साथ थी। दरवाजे के पास पहुँचकर मेरा कदम न उठता था। शाहदा ने मुझे हटाकर भाँककर देखा। किवाड़ का शब्द सुन कर बैरिस्टर साहब निकल आये, क्योंकि वह शायद आसरे में थे। वह सीधे गुमलखाने की ओर चले। वह जैसे ही दरवाजे के सामने आये, इस नटखट शाहदा की बच्ची ने मुझे एकदम से आगे करके फुर्ती से दरवाजा खोलकर भीतर को जोर से धकेल दिया। वह इतने निकट थे कि मैं उनसे लड़ गई। उन्हें इस बेतुकी हर्कत का गुमान भी न था। “अरे !” कहकर उन्होंने एकदम से मुझे हाथों से रोका। वह खुद घुरी तरह घबरा गये, मगर मेरी दशा पर तर्स खाकर उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। मैं क्या कहूँ कि मेरी क्या दशा थी। द्वार शाहदा ने बन्द कर लिया था, और मैं सीधे कमरे में घुस गई। चादर में भली-भाँति अपने को लपेटकर बैठ गई।

बैरिस्टर साहब जब आये, तो पहले सलाम किया, और अंदर घुस आने की धमकी देकर जवाब लिया। फिर मिजाज पूछा। जवाब में मैंने हाथ द्वार से बाहर कर दिया।

“यह क्या हाल है ?”—बैरिस्टर साहब ने उँगली-देखकर कहा—“दीख पड़ता है कि उँगली और अँगूठी दोनों में आपने जर्जरी की है।”

मैं कुछ न बोली, और उन्होंने उँगली को चारों ओर से देखा, फिर पूछा—“कृपाकर पहले यह बता दीजिये, वह कौन चंचल हैं, जिन्होंने आपको मेरे ऊपर धकेल दिया ? आपके लगी तो नहीं ?”

मैंने बस इतना कहा—“शाहदा ?”

कहला दूँगी कि यह पान उन्हीं के हाथ में देना और कह देना कि तुम्हारी साली ने भेजा है।”

यह तदबीर मुझे भी पसन्द आयी; क्योंकि माता जी यही समझतीं कि पान में कुछ ठट्ठा किया होगा, जो नयी बात न थी।

जब यह सब ठीक कर चुकी, तो शाहदा ने अँगूठी उतारने की कोशिश शुरू की। बहुत शीघ्र मालूम हो गया कि इसका उतारना उतना सहज नहीं है। तेल और साबुन की मालिश की गयी, मगर कुछ न हुआ। जब सब जतन करके हार गयी, तब शाहदा भी घबरायी और कहने लगी—“उँगली सूज गयी। यह तो खुदा ही उतारे, तो उतरे।” घण्टों उसमें मूँड़ मारा गया। बोराली सीने का बड़ा सूजा लाया गया। छोटी-बड़ी कैंचियाँ आयीं। मोचना लाया गया। काग निकालने का पेंच और मशीन का पेंचकश। जो कुछ औजार मिला, लाया गया और उससे काम लिया गया; मगर सब बेकार !

रात को उसी सोच में मुझसे खाना भी न खाया गया। थककर मैं बैठ रही और शाहदा से कहा—“खुदा के लिए तू ही कुछ कर।” रात को गर्म पानी में उँगली डुबोयी गयी और सब प्रकार डोरे डालकर खींची गयी, मगर कुछ न हुआ ! रह-रहकर मुझे सोच आता था और शाहदा जब जतन करते-करते थक जाती, तो मैं कहती—“खुदा के लिए मुझे तो इस अँगूठी की मुसीबत से बचा।”

“फिर तू आँख लड़ाने गयी ही क्यों थी ?”—शाहदा खुद तंग आकर बोली।

“खुदा की मार पड़े तुम्हारी इस इश्कबाजी पर। मैं तो

इस संकट में फँसी हूँ और तुम्हें यह हँसी सूझी है ?”—मैंने मुँह फुलाकर कहा ।

“यह इश्कवाजो नहीं तो क्या है ? गयी वहाँ और शौक से भिस्सी और पाउडर लगाया, फिर दुल्हा के चोंचले में पड़कर अँगूठी भी पहन ली”—शाहदा ने कहा—“अब इस रसिकता का मजा भी चखो । खूब गुलझरें उड़ाये और अब……।”

मैंने अपने हाथ से उसका मुँह बन्द करके कहा—“खुदा के लिए तनिक धीरे बोलो ।”

“ला, कैची से अँगूठी कतर दूँ”—शाहदा ने कहा—“वैसे यह नहीं उतरेगी ।”

मैंने कहा—“न बहन, कतरने न दूँगी । न-जाने कितनी कीमत की अँगूठी है । एक तो मैं शामत की मारी इतरदान तोड़ आयी और इसे भी काट डालूँ !”

“भला, मजाल है, जो वह चूँ भी कर जायँ । अभी कहला भेजूँ, जाओ जी अपना रास्ता नापो, हमारी लड़की भारू नहीं, कहीं और जाकर देखो ।”—यह कहकर शाहदा ने कैची ले ली और मुझसे कहा—“इधर लाओ, इधर ।”

“नहीं, नहीं”—“मैंने कहा—“एना न करो ।” फिर वही जतन होने लगे । यहाँ तक कि इस अँगूठी ने रात भर मोने न दिया । रात भर उँगली पर भाँति-भाँति से खींची गयी । कभी मैं अपने को खूब-खूब कासती और कभी अँगूठी को खरी-खाटी सुनाती और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करती कि ईश्वर तू ही सहाय हो ।

तंग आकर प्रातःकाल मैंने शाहदा से कहा—“अब मेरी उँगली वैसे भी मारे पीड़ा के कड़ी पड़ गयी है । तू कट दे ।”

शाहदा ने कैची से अँगूठी काटनी चाही । आशा थी कि

“आपकी कोई सखी मालूम पड़ती हैं”—बैरिस्टर साहब ने कहा—“हैं तो बड़ी भोली ।”

मैं शाहदा की शरारत पर मन-ही-मन हँस रही थी कि देखो, इस दुष्ट ने कैसी शरारत की ।

“मैं साबुन लाता हूँ”—यह कहकर वह साबुन लेने गये । मुझसे कहा भी न गया कि साबुन की मालिश हो चुकी है ।

बैरिस्टर साहब ने साबुन से खूब मालिश की और फिर सब भाँति अँगूठी उतारने का उद्योग किया, लेकिन सब बेकार हुआ । जब सब जतन कर चुके, तब थककर उन्होंने कहा—“यह अँगूठी आप पहने रहें । बड़े सगुन की है । मेरा भाग्य अच्छा है, नहीं तो हजारों रुपया खर्च करने पर भी मुझे इस नाप की अँगूठी न मिलती ।

मैं घबरा गयी और मुझे शर्म मालूम हुई । मुँह से तो न बोली, पर हाथ को झटका कि उतार दीजिये ।

“अब यह नहीं उतरती”—उन्होंने बेपरवाही से कहा—“पहने रहिये ।”

मैं बहुत घबरायी और सारी शर्म और हया तक्र में रखकर बोली—“खुदा के लिए मेरी हालत पर तर्स कीजिये और कोई जतन कीजिये । चाहे उँगली कटे, या रहे ।”

बैरिस्टर साहब ने कहा—“उतर तो यह सकती है, परन्तु आप राजी न होंगी ।”

मैं चुप रही कि या खुदा, राजी क्यों न होऊँगी । बैरिस्टर साहब भी चुप रहे । क्या कहूँ, मैंने फिर बेशर्म बनकर कहा—“मैं सब प्रकार राजी हूँ । उतर जाय ।”

मैं बिलकुल न जानती थी कि इससे उनका क्या मतलब है । वह सुनकर चले आये । मैं चादर में मुँह छिपाकर सिकुड़

गयी। वह पलंग के सामने एक कुरसी पर मेरे आमने-सामने बैठ गये। कहने लगे—“ठीक बात तो यह है कि इसमें तीन हाथों की आवश्यकता है। आप अगर राजी हों, तो मैं अपने दोनों हाथों की उँगलियों से धीरे-धीरे दबाता हूँ। साबुन लगाकर आप अपने हाथ से अँगूठी ऊपर करने की कोशिश करें। बस, और कोई जतन नहीं।”

बेवसी सब कुछ करवा लेती है। मैंने भी ऐसा ही किया।

उन्होंने साबुन की मालिश करके उँगली दबायी और मैंने अँगूठी उतारने की कोशिश की।

मेरा सारा मुँह चादर में ढँका था, क्योंकि मैं सर से पैर तक चादर में लिपटी बैठी थी। मैं टटोल-टटोलकर अँगूठी ऊपर कर रही थी। दो दफा अँगूठी चक्कर खा-खाकर उँगली की गिरह पर से लौट-लौट गयी। बैरिस्टर साहब ने जब तीसरी बार देखा कि मैं कहीं-कहीं अँगूठी सरकाती हूँ, तो उन्होंने कहा—“आप तो अँगूठी उतरवाने पर सब बातों पर राजी हैं। इस काम में तीन हाथों के अलावा चार आँखों की भी जरूरत है, अभाग्यवश यहाँ बस दो ही काम कर रही हैं। पर आपको सब कुछ मंजूर है।” यह कहकर उन्होंने एक भटके से मेरी चादर उतार ली और खींचकर उसे दूर फेंक दिया। मैं सिकुड़कर बैठ रही और अपना मुँह गोद में छिपाकर चादर की ओर हाथ बढ़ाया।

“मैं सच कहता हूँ कि मेरी यह ताकत नहीं, जो आपकी ओर आँख उठा सकूँ। इस वास्ते चादर की आपको बिलकुल जरूरत नहीं। वैसे मैं नाहीं नहीं करता, लेकिन अपना हाथ और दोनों आँखें काम में लाइये।” यह कहकर वह वास्तव में नीचे की ओर देखते फिर उसी तरह कोशिश करने लगे।

मैं फिर चादर की ओर बढ़ी, तो उन्होंने उँगली घसीटकर कहा—“नहीं, आप दूसरा हाथ तो मुँह पर रखे ही हैं, फिर मेरी सौगन्द का आप विश्वास नहीं करती ? खुदा गवाह है। मैं आपको कभी न देखूँगा।” यह उन्होंने ऐसे कहा, जैसे कोई खिज के कहता है। मैंने बेबस होकर हाथ हटा लिया और उँगली दवाने लगी। पर क्या कहूँ, जो मेरी दशा थी। वह मेरी ओर बिलकुल नहीं देख रहे थे, और मैं देख रही थी कि वह गरदन बहुत नीचे की ओर किये हैं, मगर फिर भी मैं सिमटी जा रही थी। दोनों हाथ अलग थे, और समझ न पड़ता था कि मुँह कहाँ ले जाऊँ, मगर यह दशा तनिक देर रही। वह बोले—“आप तो उतराने में मन नहीं लगाती।” मैं सब भूलकर उद्योग करने लगी। दोनों कोशिश कर रहे थे, मगर मैं रह-रहकर अपनी निगाह अँगूठी से हटाकर बैरिस्टर साहब के चौड़े माथे और साफ-सुन्दर भुके हुए मुँह पर छिपकर फेंक लेती थी। कभी मैं उनके पपोटों को देखती और कभी लम्बी-लम्बी पलकों को। मुझे यह मालूम न था कि जब मैं ऐसा करने लगती हूँ, तब मेरा हाथ काम करने से आप-ही-आप रुक जाता है, और जिस मनुष्य का ध्यान उँगली और अँगूठी पर है, वह बड़ी आसानी से जान सकता है—बिना मेरी ओर देखकर—कि मेरी आँखें अब कहाँ से कहाँ पहुँच गयीं। एक बार मैंने जी कड़ा करके बैरिस्टर साहब का मुँह ध्यान से जी भरके देखा। उधर मेरा हाथ रुक गया। बैरिस्टर साहब ने तझ आकर कहा—“मुझे आप फिर फुरसत में देख लीजियेगा। इस समय तनिक दया करके इधर देखिये।” यह कहकर उन्होंने मेरी उँगली झटकी।

मुझे ऐसी शर्म लगी कि मैंने तुरन्त अपना मुँह अपने बायें हाथ की कुहनी से छिपा लिया ।

बैरिस्टर साहब ने कहा—“अच्छा, साफ कीजिये ।” और उसी प्रकार नीचे की ओर देखते हुए मेरा हाथ पकड़कर काम में लगा दिया ।

फिर मेरी हिम्मत न पड़ी, जो बैरिस्टर साहब की ओर ताकूँ । बड़े ध्यान से अँगूठी उतारने की कोशिश की । बहुत-बहुत उद्योग हम दोनों ने किया, मगर वह प्राणलेवा अँगूठी न उतरती थी, न उतरी । जब बैरिस्टर साहब थक गये और आशा न रही, तब उन्होंने हाथ रोक लिया, और उसी भाँति नीचे की ओर देखते हुए बोले—“यह नहीं उतर सकती । क्या आप कह सकती हैं कि यह किस इच्छा से पहनी थी ?”

मैं भेंप गयी और बाएँ हाथ की कुहनी से मुँह छिपा लिया ।

बैरिस्टर साहब ने कहा—“बस, एक बात का उत्तर दे दीजिये, तो अभी आपको छुट्टी मिल जाय । वह यह कि समय से पहले आपने इसे क्यों पहन लिया ?” हाथ को उन्होंने भटककर कहा—“बोलिये !”

मैं कुछ न बोली, तो उन्होंने कहा—“फिर आप जानें और आपका काम । मैं बस, इसी शर्त पर यह कठिनाई दूर कर सकता हूँ ।”

मैं बड़ी मुश्किल से बस इतना ही कह सकी “यो हीं ।” मैं कम्बख्तियों से कुहनी की आड़ में बैरिस्टर साहब के सुन्दर मुँह को बड़े गौर से देख रही थी । उनकी लम्बी-लम्बी पलकें उसी भाँति नीचे की ओर झुकी हुई थीं ।

उन्होंने मेरा उत्तर सुनकर बहुत धीरे से कहा—“आपके पूज्य पिता जी तो एक वर्ष का समय चाहते हैं, मगर धन्यवाद है कि आप खुद.....”

उन्होंने तरस खाकर इतना ही कहा, अधिक और कुछ न बोले—“इसकी कोई जरूरत तो थी नहीं।” उन्होंने बात बदलने के अभिप्राय से कहा—“आपके उत्तर के लिए धन्यवाद। अब बात यह कि यह अँगूठी कट के उतरेगी, और मुझे बाजार से रेत लानी पड़ेगी।” यह कहकर वह उठ बैठे और द्वार की ओर देखने लगे। मैंने समय पाकर चादर ले ली और अपने ऊपर डाल ली। मुझे तुरन्त खयाल आया कि एक छोटी-सी रेत मैंने उस छोटे बक्स में देखी थी, जिसमें बहुत-से छोटे-छोटे नाखून काटने और घिसने के औजार रखे थे। मैं कुछ कहने को थी ही कि बैरिस्टर साहब बोले—“मैं इस जगह से जानकार नहीं हूँ, मगर जाता हूँ, कहीं-न-कहीं से रेत ढूँढ़ लाऊंगा। आप ठीक समझें, तो भीतर चली जायें।” यह कहकर वह खूँटी की ओर अपनी टोपी लेने बढ़े।

मैंने जी कड़ा करके बल इतना ही कहा—“है।”

“कहाँ है?”—बैरिस्टर साहब ने मुड़कर पूछा।

मैंने उत्तर में दृढ़ की ओर उँगली उठा दी।

“मेरे दृढ़ में?”—बैरिस्टर साहब ने आश्चर्य से पूछा—
“मेरे दृढ़ में?”

“जी” मैंने धीरे से कहा।

“कम-से-कम आज तक तो मुझे रेत और फावड़े सूटकेस में रखने की आवश्यकता हुई नहीं, आगे ईश्वर जाने। यह और बात है कि जब आप...” इतना कहकर वह रुक गये, पर मैं जान गयी कि यह सब उन्होंने मुझी पर डालकर कहा है। फिर बोले—“तो आप ही कष्ट करें और निकाल दें, क्योंकि यह मैं ठीक कहता हूँ कि मेरे पाम कोई रेत या फावड़ा नहीं है।”

उठना तो पड़ता ही । यह सोचकर कि लाओ इनकी बात गलत साबित कर दूँ, मैं बड़ी । उन्होंने सूटकेस खोल दिया । मैंने इधर-उधर देखकर और चीजों को उलट-पलटकर वह बक्स उनके सामने डाल दिया ।

“ओहो ! होगी तो । इसमें अवश्य होगी । माफ कीजियेगा । आपने खुद ही मेरे ट्रंक की तलाशी ली है, मगर देख लीजिये, फावड़ा नहीं है ।”

उनकी आँखें इस भाँति की थी कि मैं बार-बार उन्हें देख रही थी, और वह बेचारे क्रसम खाने को भी पलक न उठाते थे । मैं मन-ही-मन कह रही थी कि कैसा भला और शर्मीला आदमी है । बक्स में से एक लम्बी-सी सीप के दस्ता की नाजुक-सी रेती निकाली । बैरिस्टर साहब ने कहा—“यदि अब तीन हाथ और चार आँखें लगें, तो बस पाँच मिनट का काम है ।” देर वैसे भी बहुत हो चुकी थी । मैंने बहुत देखभाल के अपनी उँगली पकड़ ला इस प्रकार कि अँगूठी न हट सके और बैरिस्टर साहब ने उस बारीक और तेज रेती से काटना शुरू किया । उसके रेतने में बड़ी कठिनाई पड़ रही थी क्योंकि इधर-उधर उँगली का माँस सूजा हुआ था । बैरिस्टर साहब अँगूठी काटने में तत्पर थे और मैं फिर कमबख्ती से कनखियों से उनकी लम्बी-लम्बी पलकें और सुन्दर ललाट को देख रही थी । अँगूठी काटते काटते बैरिस्टर साहब ने मुझसे पूछा — “आपने मुझे भलीभाँति देखा है ?” मैंने कुछ उत्तर न दिया, तो उन्होंने कहा — “तो मैं काम छोड़े देता हूँ, नहीं तो जवाब दीजिये ।” यह कहकर उन्होंने हाथ रोक लिया ।

मुझे जल्दी थी, और मैं यह समझकर कि इसका जवाब

पाकर शायद अब प्रश्न न हो, बोली—“जी हाँ।” वह कहकर मैं शरमा गयी।

बैरिस्टर साहब बोले—“किन्तु मैंने अभी तक आपको नहीं देखा है। सिर्फ एक भलक देखी थी, और वह भी धोके से।”

यह बिल्कुल सत्य था कि उन्होंने मुझे एकबार भी नज़र-भर के न देखा था और मैं बराबर देखती रही थी! इससे मुझे कब इनकार था? मैं चुप हो रही। कुछ न बोली। अँगूठी थोड़ी ही रह गयी थी कि बैरिस्टर साहब ने हाथ रोककर उसी प्रकार नीचे ताकते हुए कहा—“इतनी मेहनत मैंने मुफ्त कर दी, पर अब बिना मजदूरी के कुछ न करूँगा। वादा कीजिये, क्योंकि यह अन्याय है कि आप मुझे देख लें, और मैं न देखूँ।”

मैं चुप रही और चादर से मुँह को भलीभाँति छिपाने लगी कि उन्होंने उँगली भी छोड़ दी। मैं बहुत शीघ्रता कर रही थी। मैंने दुखी होकर कहा—“खुदा के लिए।”

“बस, बस, यह लीजिये।” यह कहकर उन्होंने पलक मारते अँगूठी को काटकर निकाल दिया। और अब मेरी जान में जान आयी।

“मेरी मजदूरी?” बैरिस्टर साहब ने कहा।

मैंने और भी चादर में मुँह छिपा लिया।

“यह नहीं हो सकता।” यह कहकर उन्होंने एक भटके में चादर मुँह से उतार डाली। सीधा हाथ तो मेरा पकड़े ही हुए थे, मैंने बाएँ हाथ की कुहनी अपने मुँह पर रख ली।

“यह कोई न्याय नहीं,”—बैरिस्टर साहब ने कहा—“यदि आपको काफ़ी समय है; बड़ी अच्छी बात है, इसी प्रकार बैठी रहिये।”

मैं बहुत घबरा रही थी और सर झुकाये हुए कुहनी से मुँह छिपाये बैठी थी। सोच रही थी कि कैसे पीछा छुड़ाऊँ। सीधा हाथ तो पकड़े थे ही, उन्होंने कहा—“माफ कीजिएगा।” यह कहकर मेरा बायाँ हाथ भी मेरे मुँह से हटा दिया। लाचारी मैंने अपना मुँह कंधों, आँचल और अपनी गोद में छिपाने की कोशिश की, ताँ उन्होंने हाथ छोड़कर अपने हाथों से मेरी ठुड्ढी ऊपर को कर दी। मैंने अपना छुटा हुआ हाथ तुरन्त मुँह पर रख लिया। हारकर बैरिस्टर साहब ने कहा—“अगर मेरे आज तीन हाथ हो जायँ।” अब अगर वह मेरे दोनों हाथ पकड़ लेते तो मैं गोद में मुँह छिपा लेती, और हाथ छोड़कर सर ऊपर करते तो हाथ से ढक लेती।

हारकर बैरिस्टर साहब बोले—“चाहे कुछ भी हो, देर वैसे ही हो रही है, मगर उस समय तक कभी न जाने न दूँगा, जब तक ईमानदारी से आप मेरी मजदूरी न दें।” लाचार होकर अपना पीछा छुड़ाने की गरज से क्षण-भर को आँखें मूँद ली, और हाथ मुँह से हटा लिये। मैंने जब आँखें खोली, तब वे मेरी ओर ताक रहे थे। दूसरा हाथ भी मैंने झटककर छुड़ा लिया और दोनों हाथों से छिपाकर चादर इकट्ठी करके जाने को सरकी। मैं जाने ही को थी कि उन्होंने कोमल स्वर में कहा—“ठहरिये।” मैंने भाँककर देखा, तो वह सूटकेस में से कोई वस्तु निकाल रहे थे। उन्होंने एक छोटा सा डिब्बा निकाला, और उसमें से एक सोने की घड़ी निकालकर मेरी कलाई पर बाँधी और कहा—“और चीज शाम को।”

इतना कहकर मेरा हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया और कहा—“जाइये। खुदा खैर करे।” जैसे ही मैं जाने को हुई, मेरा हाथ पकड़कर और झटककर कहा—“हमें भूलोगी तो नहीं?”

मैं कुछ न बोली; मगर अपनी कुहनी और चादर की आड़ से उनके सुन्दर मुख को देखती रही। क्या बताऊँ, इस बात से मेरे दिल पर कैसी बीती। ऐसा मालूम होता था कि ये बातें उन्होंने सच्चे मन से कही हैं।

एक बार फिर उन्होंने यही शब्द मुझसे कहे, और जब मैं कुछ न बोली, तो बायें हाथ से मेरी ठुड्डी ऊपर उठाकर कहा—“खुदा के लिए भूल न जाना।” मैंने सर हिलाकर बताया कि नहीं भूलूँगी। वह झुके हुए थे, और चादर के कोने में से मेरी उनकी चार आँखें हो गयी, क्योंकि मैं निगोड़ी उस समय भी उन्हें ताक रही थी। मेरा सर हिलाना बस गजब कर गया! एक हाथ मेरी ठुड्डी पर था ही दूसरे हाथ से अनजान में उन्होंने झटककर मेरा हाथ मुँह से हटा दिया—“भूल न जाना, भूल न जाना, भूल न जाना। खुदा खैर करे।” मेरी आँखें बन्द हो गयीं और साँस जहाँ की तहाँ रुक गयी।

जैसे भी बना, मैं इस मुसीबत से पीछा छुड़ाकर भागी, और तीर की तरह दरवाजे के भीतर घुस गयी।

“अरी, यह क्या? यह क्या?”—शाहदा ने मुझे बेहाल देखकर कहा—“यह क्या?”

मैंने बनावट से कहा—“कुछ नहीं, होता क्या?”

शाहदा बोली—“मौसी आई थी और तुझे पूछ रही थी।”

मैं सन्न रह गयी और घबराकर पूछा—“फिर तुमने क्या कह दिया?”

शाहदा ने भोलेपन से कहा—“कहती क्या? मैंने कहा शहद खा रही है, अभी आती है।”

मैंने कहा—“तेरा सत्यानाश हो, तूने मुझे दहला दिया।”

वह बोली—“तनिक मुझे बता तो दे, यह क्या हो रहा था ? दुष्ट...”

मैंने बात काटकर कहा—“हम नहीं बताते ।” यह कहकर मैंने उसका हाथ पकड़कर साथ-साथ घसीटकर कमरे में आयी, और उसे वह घड़ी दिखाने लगी, जो बैरिस्टर साहब ने आदर से पहना दी थी ।

शाहदा ने उसमें कूक भरी और कान से लगाकर बोली—“अब तूने बैरिस्टर साहब को फँसा लिया और वह एक वर्ष क्या दो वर्ष इन्तजार करेंगे, मगर विवाह तुझ से ही करेंगे ।”

शाम को सारी वस्तुएँ—यानी पाउडर का डिब्बा और दूसरी डिब्बियाँ आदि—मय अँगूठी के आयीं । न मालूम किससे इस थोड़े-से समय में बैरिस्टर साहब ने अँगूठी को ऐसी सफाई से जुड़वा दिया था कि शाहदा को छोड़कर इस समय और किसी को पता न चला । पिता जी को बैरिस्टर साहब ने फुसलाकर राजी कर लिया, और वह अब एक वर्ष छोड़ छ महीने पर आ गये । बैरिस्टर साहब दो महीने बाद फिर आये । मेरा मन कहता था कि वह जरूर मुझसे मिलना चाहते होंगे, और शायद इसी आसरे में आये भी होंगे; मगर मैं माँकने तक भी न गयी । कुछ वस्तुएँ तोहफा के तौर पर भिजवाकर वह चले गये ।

छ माह में से चार तो बीत चुके हैं, और दो बाकी हैं ।

कुछ भी हुआ अच्छा या बुरा, मगर अँगूठी की मुसीबत को कभी न भूलूँगी ।

हीरे के बुन्दे

मखमल की डिबिया !.....बहुत सुन्दर ! बीर-बहूटी-सी लाल-लकनूर ! ढकना जो खोला, तो जगमग-जगमग करती हुई हीरे के बुन्दों की जोड़ी ! उनपर कैसा सुन्दर अच्छा काम था !

खानम अपनी हथेली पर रखकर हाथ ऊँचा करके मुझे इस तरह मुसकराकर दिखा रही थी, मानो मैं खुद हीरे के बुन्दे पहनने के लिए प्राण वारने को तैयार हूँ ।

वह बोली—“देखो, कैसी चमक है !” बुन्दों के छोटे-छोटे हीरों से निकलती हुई सूर्य जैसी किरणें, हाथ हिलने से, मेरी आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थीं, मानो कोई धूप में आईना चमका रहा हो ।

मैं क्या कहता ? मैंने ज़रा खाँसकर कहा—“बुन्दों की बनावट बहुत अच्छी है ।”

खुश होकर खानम काँपती हुई आवाज़ में बोली—“और हीरे ! हीरे कैसे हैं ?

मैंने कहा—“कैसे क्या हैं, जैसे होते हैं, वैसे हैं ।”

खानम बोली—“मैं तो कहती हूँ कि हजार रुपये के मोटे-मोटे भारी-भारी गहनों से यह साढ़े तीन सौ के हीरे के बुन्दे अच्छे हैं ।”

यह कहकर उसने एक बुन्दा डिबिया से निकाला और उसे चुटकी से पकड़कर अपने कानों से लटका कर देखा । मुझे हँसी आयी, और मैंने कहा—“पगली कहीं की.....मूर्ख !”

वह बुन्दों को कान से हटाते हुए बोली—“क्यों, साढ़े तीन सौ माँगता है, तीन सौ तक दे देगा ?”

मैंने कहा—“कैसी बेवकूफों की-सी बातें करती हो ? देखती नहीं हो कि पास में कौड़ी भी नहीं और फिर ऐसी बातें करती हो ?”

यह सुनते ही खानम का मुँह सूख गया । जो कुछ भी कमाई थी, वह उसी के हाथ में आती थी । वह खुद जानती थी कि हम भाग्यवान और धन-दौलत वाले नहीं । घर का खर्च ही मुश्किल से चलता है । इतना रुपया कहाँ से आया, जो हीरे मोल लें...कुछ विचार कर बेचारी कुम्हलाकर रह गयी ! चुपके से एक ठंडी साँस ली । बुन्दों की डिव्रिया बन्द कर दी, मेरी ओर भोलेपन से देखा, नज़र नीची कर ली और चुप हो गयी ।

पाठक ! यह अवसर एक गरीब, परन्तु अपनी पत्नी को हृदय से चाहनेवाले पति के लिए बहुत, कठिन होता है । मेरा दिल मसलकर रह गया । रुपये-पैसे की कमी खाने-पीने के लिए बहुत खलती है । आह ! अगर हम भी घनश्याम-दास बिड़ला होते, या सीतामऊ के राजकुमार होते तो अपनी प्यारी खानम को एक छोड़ दो हीरे के बुन्दे दिला देते । ऐसे समय मेरे-सा कङ्गाल पति अपनी स्त्री के मन की बात पूरी नहीं कर सकता । मैंने भी एक ठंडी साँस ली.....आँख उठाकर खानम को देखा । उसने मुझे देखा । मेरी आँखों ने कुछ उससे कहा और उसकी प्रेमभरी आँखों ने कुछ मुझसे कहा और दोनों चुप हो गये । हीरे के बुन्दों का सौदा हो चुका, मगर मैंने अपने मन में ठान ली और मन ही मन कहा—“अब तो चाहे कुछ बीत जाय, कभी-न-कभी तुझे यह बुन्दे जरूर दिला दूँगा । बस, कोई अच्छा-सा मुकदमा आ जाय ।”

हीरे के बुन्दे

मखमल की डिबिया !.....बहुत सुन्दर ! बीर-बहूटी-सी लाल-लकनूर ! ढकना जो खोला, तो जगमग-जगमग करती हुई हीरे के बुन्दों की जोड़ी ! उनपर कैसा सुन्दर अच्छा काम था !

खानम अपनी हथेली पर रखकर हाथ ऊँचा करके मुझे इस तरह मुसकराकर दिखा रही थी, मानो मैं खुद हीरे के बुन्दे पहनने के लिए प्राण वारने को तैयार हूँ ।

वह बोली—“देखो, कैसी चमक है !” बुन्दों के छोटे-छोटे हीरों से निकलती हुई सूयें जैसी किरणें, हाथ हिलने से, मेरी आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थीं, मानो कोई धूप में आईना चमका रहा हो ।

मैं क्या कहता ? मैंने ज़रा खाँसकर कहा—“बुन्दों की बनावट बहुत अच्छी है ।”

खुश होकर खानम काँपती हुई आवाज़ में बोली—“और हीरे ! हीरे कैसे हैं ?

मैंने कहा—“कैसे क्या हैं, जैसे होते हैं, वैसे हैं ।”

खानम बोली—“मैं तो कहती हूँ कि हजार रुपये के मोटे-मोटे भारी-भारी गहनों से यह साढ़े तीन सौ के हीरे के बुन्दे अच्छे हैं ।”

यह कहकर उसने एक बुन्दा डिबिया से निकाला और उसे चुटकी से पकड़कर अपने कानों से लटका कर देखा । मुझे हँसी आयी, और मैंने कहा - “पगली कहीं की.....मूर्ख !”

वह बुन्दों को कान से हटाते हुए बोली—“क्यों, साढ़े तीन सौ माँगता है, तीन सौ तक दे देगा ?”

हीरे के बुन्दे]

L २२

मैंने कहा—“कैसी बेवकूफों की-सी बातें करती हो ? देखती नहीं हो कि पास में कौड़ी भी नहीं और फिर ऐसी बातें करती हो ?”

यह सुनते ही खानम का मुँह सूख गया । जो कुछ भी कमाई थी, वह उसी के हाथ में आती थी । वह खुद जानती थी कि हम भाग्यवान और धन-दौलत वाले नहीं । घर का खर्च ही मुश्किल से चलता है । इतना रुपया कहाँ से आया, जो हीरे मोल लें...कुछ विचार कर बेचारी कुम्हलाकर रह गयी ! चुपके से एक ठंडी साँस ली । बुन्दों की डिविया बन्द कर दी, मेरी ओर भोलेपन से देखा, नज़र नीची कर ली और चुप हो गयी ।

पाठक ! यह अवसर एक गरीब, परन्तु अपनी पत्नी को हृदय से चाहनेवाले पति के लिए बहुत, कठिन होता है । मेरा दिल मसलकर रह गया । रुपये-पैसे की कमी खाने-पीने के लिए बहुत खलती है । आह ! अगर हम भी घनश्याम-दास बिड़ला होते, या सीतामऊ के राजकुमार होते तो अपनी प्यारी खानम को एक छोड़ दो हीरे के बुन्दे दिला देते । ऐसे समय मेरे-सा कङ्गाल पति अपनी स्त्री के मन की बात पूरी नहीं कर सकता । मैंने भी एक ठंडी साँस ली.....आँख उठाकर खानम को देखा । उसने मुझे देखा । मेरी आँखों ने कुछ उससे कहा और उसकी प्रेमभरी आँखों ने कुछ मुझसे कहा और दोनों चुप हो गये । हीरे के बुन्दों का सौदा हो चुका, मगर मैंने अपने मन में ठान ली और मन ही मन कहा—“अब तो चाहे कुछ बीत जाय, कभी-न-कभी तुझे यह बुन्दे जरूर दिला दूँगा । बस, कोई अच्छा-सा मुकदमा आ जाय ।”

खानम ने जौहरी को बुन्दे वापस कर दिये और कह दिया कि बुन्दे अच्छे नहीं हैं ।

[२]

एक दिन का जिक्र है कि सख्त जाड़ा पड़ रहा था । बिस्तर छोड़ना कठिन हो गया । दो बार खानम ने घसीटा भी, मगर मैं न उठा । वैसे ही बिछौने पर बैठे-बैठे चाय पी । चाय पीकर सिगरेट पी ही रहा था कि क्या देखता हूँ कि बड़ी आल्मारी के पीछे से एक काली बिल्ली भाँक रही है । तुरन्त दबे-पाँव उठा और दोनों दरवाजे दौड़कर बन्द कर दिये । फिर कमरा सरपर उठा लिया—“बिल्ली पकड़ी है...घेर लिया...बन्द कर लिया बिल्ली को...खानम दौड़ियो । ...अरे, बहरी हो गयी ?”

बात यह है कि खानम को कबूतर पालने का बड़ा शौक था और यह दुष्टा बिल्ली खानम के कई अनमोल कबूतरों का सफाया कर चुकी थी । दूध-मक्खन तो मानों बिल्ली के वाप ही उसके लिए हमारे पास रख गये हों । रोज़ ही खा जाती थी । खानम खुद इसकी ताक में थी । मेरी आवाज़ सुनकर खानम बौखलायी हुई, हाँपती-काँपती दौड़ी आयी । मैंने खानम को भीतर लेकर कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया ।

अब एक और बात सुनिये । खानम की अम्माजान बिल्ली की जान लेने के सख्त खिलाफ़ थीं और बिल्ली का यह हाल था कि रुई के गाले की मार से काबू में नहीं आती । मगर मैंने भी बिल्ली का मिजाज़ दुरुस्त करने की एक तरकीब निकाली । वह तरकीब यह है कि खुद तो दरवाज़े का पट जरा-सा खोलकर एक कुरसी पर खड़े हो जाइये, और घरवाली से कहिये कि लकड़ी लेकर उसे मारने दौड़े । जब बिल्ली

से डर लगे; तो लकड़ी तो बिल्ली को ताक करके ऐसी मारे कि ठीक लैम्प में जाकर लगे, और फिर उसके बाद जूते, तकिये, जरूरी मुकदमों की मिसलें, छोटा वाला जावता दीवानी, जावता फौजदारी और दूसरे कानूनी किताबें या और कोई चीज, जो पल्ले पड़ जाय, दूर ही से बिल्ली की तरफ फेंके। जब इन सब चीजों में से कुछ भी बिल्ली के न लगे, तो सिगरेटों का भरा हुआ डिब्बा उठा कर मारे। डिब्बा जरूर खुल जायगा, और इतने सिगरेटों में से कम-से-कम एक तो बिल्ली के जरूर ही लगेगा और वह घबराकर उसी दरवाजे से निकल कर भागेगी, जिसका एक पट थोड़ा-सा आप खाले खड़े हैं। वस, अब हाथ की सफाई आप की यह होनी चाहिए कि बिल्ली के बाहर निकलने से पहले आप ऐसी तेजी से दरवाजा बन्द करें कि बिल्ली दब जाय—आधी अन्दर, आधी बाहर। जब बिल्ली दब जाय, तो अपनी जगह पर घरवाली को खड़ा कीजिए कि दरवाजा मजबूती से पकड़े रहे और बिल्ली को जोर से दबाये रहे। फिर आप खुद एक तेज उस्तुरा लेकर खीरे की तरह नकटी की दुम जड़ से काट लीजिए। वस, फिर जो दुमकट्टी कभी आप का कबूतर ले जाय, तो मेरा जिम्मा।

अतः मैंने भी बिल्ली के साथ यही किया; मगर किस्मत तो देखिये कि इधर तो मैं बिल्ली की दुम की खबर ले रहा था; और उधर मुंशी जी दो-तीन मुवाकिला को फाँसे हुए इसी दरवाजे की तरफ ला रहे थे।

बिल्ली को मुर्सावत में फाँसे हुए अरबी बोलते देख कर मुंशी जी लपके, ठीक उसी समय जब मैंने बिल्ली की दुम काटी और बिल्ली की “गर्-फूँ-कुश” एक भयानक

“म्याँऊँ” पर खतम हुई। दुमकटी बिल्ली अपनी दुम छोड़-छाड़ और यह सोचकर कि सस्ती छूटी, जो सिर्फ़ दुम पर ही बीती, तोप के गोले की तरह सीधे मुंशी जी पर गिरी; और मुंशी जी घबरा कर मुक्किलों पर “गल-गप !”

खानम ने आहट पाकर दरवाजे के शीशे से बाहर मुंशी जी की हड़बोंग देखी, और दाँत-तले उँगली दबाकर धीरे से कहा—“मुंशी जी !”

मैंने हाथ से बिल्ली की दुम भी नहीं फेंकी थी कि मुंशी जी ने अपनी भुर्रियोंदार सूरत दरवाजे के भीतर डालकर दर्शन दिये। अन्दर का सीन उनके सामने था। मेरे एक हाथ में उस्तुरा और दूसरे में बिल्ली की दुम थी। मेरे बराबर खानम खड़ी थी, और कमरे में मुकदमों की मिसलें, किताबें और सिगरेट बिखरे पड़े थे, मुंशी जी डाँटकर कमरे में घुसे, और फिर गले की रंगें तानकर, दाँत पीसकर, ऐनक के ऊपर से गोल-गोल आँखें फिरा कर और हाथ भटक-कर बोले—“यह वकालत हो रही है ? मारवाड़ी का मुकदमा……पाँच सौ का……जैनी सेठ !……कोट……कोट-पतलून……हूँ……।”

खानम कब की भाग चुकी थी, और मैं उस्तुरा और बिल्ली की दुम फेंक कर कपड़ों की तरफ़ लपका। जल्दी-जल्दी कपड़े पहने। पाँच सौ का नाम सुनकर ऐसा बौखलाया कि पतलून की एक ही मोहरी में दोनों पैर डाले दे रहा था। मुंशी जी अलग जल्दी के मारे मेरे होश फाखता किये डाल रहे थे।

बाहर दफ्तर में कपड़े पहनकर ऐसे ठाट से गया, मानों मैंने बिल्ली की दुम काटी तो क्या, कभी छुई भी न थी। मुक्किलों से मिला। हाल सुना। सेठ जी के साथ उनके दो

नौकर थे। मुकदमा यह था कि सेठ साहब को किसी समझदार विद्वान ने उल्लू की गाली दी थी, जिसके हिसाब से सेठ जी के स्वर्गीय पिता थोड़े से उल्लू बने जाते थे, और सेठ जी को यह बात बिल्कुल नामंजूर थी।

मैंने गौर से दिल लगाकर मुकदमे का हाल सुना, और सिर हिलाकर सच्ची बात कह दी—“मुकदमा नहीं चल सकता।”

सेठ साहब ने मुझसे पूछा—“क्यों नहीं चल सकता?” और फिर मुंशी जी की तरफ बुरी सूरत बनाकर शिकायत से मानो रोकर कहा—“वाह मुंशी जी, आप भी हमें कहाँ ले आये? हमें तो ऐसे वकील के पास ले चलिये, जो इस मुकदमे को चला दे।”

अब इस समय मेरी और मुंशी जी की आँखें चार हुईं। मुंशी जी मारे गुस्से के लाल हो गये। उनकी खूबसूरत दाढ़ी के बालों की नोकें खड़ी हो गईं, और आँखों से आँच-सी निकलती मालूम हुई। उन्होंने आँख बचाकर मेरी तरफ इस तरह दाँत पीसे कि औरों ने देख भी न पाया; और फिर सामने की अलमारी से दो-तीन किताबें, जो सबसे मोटी थीं, घसीटकर मेरे सामने पटक दीं। फिर उन सब में मोटी किताब को—जो अंग्रेजी की डिक्शनरी थी—खोलकर बगैर यह देखे हुए कि वह सीधी है या उल्टी, मेरे सामने रख दी, और कहा—“वकील साहब! यह सेठ साहब अपने ही आदमी हैं। मेरी इनकी अठारह वर्ष की दाँत-कटी दोस्ती है। आप कानून अच्छी तरह देखिये।”

मुझसे इतना कहकर मुंशी जी ने लाला साहब से कहा—
“अर्जी सेठ साहब, यह वकालत भी दूकानदारी होता है।

वकील साहब को मालूम नहीं कि मेरी आपकी अठारह साल की दोस्ती है। आप भरोसा रखिये, आपका मुकदमा सौ में चले, हजार में चले। भला मजाल है, जो आपका मुकदमा* न चले।”

सेठ साहब ने मुन्शी जी का रिमार्क बहुत पसन्द किया, और मुझे भी अपनी बेवकूफी अब मालूम हुई। मुकदमा न चल सके, तब भी मुझे यह नहीं कहना चाहिए था कि मुकदमा नहीं चल सकता। इसी गलती पर मुन्शी जी खफा हुए थे, और उनका खफा होना वाजिब भी था।

मुकदमे की बात सेठ जी से पक्की हो गयी। फीस के लिए मैंने कुछ नहीं कहा, क्योंकि जानता ही था कि पाँच सौ रुपये का मुकदमा है और मुन्शी जी बातचीत पक्की कर ही चुके हैं।

सेठ जी चले गये, तो मुन्शी जी मेरे ऊपर नाराज होकर बरस पड़े—“मैं नौकरी नहीं कर सकता.....आपकी वकालत चल चुकी.....बस, चल चुकी.....चल चुकी वकालत.....देख लिया.....इस्तहान दिया, पास हुए, समझे कि वकील बन गये.....न-मालूम कितने वकील बनाकर छोड़ दिये....”

मैं यह सुन रहा था कि इतने में क्या देखता हूँ कि शीशे में घर वाली भाँक रही है। मुझे हँसी आई, तो मुन्शी जी और भी बिगड़े, और मैं घर में भाग गया।

❁ यह मुकदमा बिलकुल नहीं चला और दूसरी ही पेशी में खारिज हो गया। मुन्शी जी और सेठ जी की दोस्ती सचमुच बड़ी गहरी और पुरानी थी, वह यों कि मुन्शी जी उसी सड़क पर अठारह वर्ष से चलते थे, जिस पर सेठ जी की दूकान थी!—लेखक

[३]

बस, कुछ न पूछिये, जो खानम का हाल था। अब हीरे के बुन्दे कैसे न आते ? ५००) रुपये का एक मुकदमा मिले, और अपनी चहेती घरवाली के लिए भला हीरे के बुन्दे कैसे न लें ? मैंने दिल में सोचा कि आज ही हीरे के बुन्दे लेता आऊँ। यह सोच रहा था कि खानम ने मानो शिकायत की—“देखो तो कितने दिन से कह रही हूँ कि एक लोहे की आल्मारी ले लो, मगर तुम सुनते ही नहीं। जो कुछ भी थोड़ा बहुत है, वह कहाँ रखा जाय ? फिर हीरे के बुन्दे—मैं तो हीरे की चीजें इधर-उधर डालती नहीं फिरूँगी। जरा-सी चीज इधर-से-उधर हो जाय और खो जाय। कपड़ों के बक्सों में भी गहना रखा जाता है ? मैंने तो सुना नहीं। जो भी सुनेगा, यही कहेगा कि चीज तो ले ली; पर रखने का ढङ्ग न आया।”

मैंने भी कहा कि बात तो ठीक है; मगर धीरे-धीरे सब हो जायगा। अब यह तय हुआ कि एक छोटा-सा लोहे का बक्स अलीभाई वली जी मुल्तान वाले के यहाँ से मँगा लिया जाय। यह बक्स जवाहरात और गहना रखने के लिए होता है। खानम दौड़ी गयी, और अलीभाई वली जी की दूकान का सूचीपत्र उठा लाई। उसमें बक्सों की तसवीरें भी थीं। एक छोटा-सा खूबसूरत बक्स था, जिसमें छोटे-छोटे खाने थे; मगर ये खाने ऐसे थे, कि इनमें हलका-फुलका अंगरेजी गहना रखा जाय, और खानम के पास दो-चार चीजें ऐसी भी थीं, जो इसमें रखने लायक नहीं थीं। जब मैंने यह कहा, तो खानम बोली—“मैं तमाम भारी और पुरानी चाल के गहनों को बेच-कर सब चीजें हलकी-फुलकी अंगरेजी चाल की कर लूँगी।

तुम इस बक्स को मँगा तो लो । यह ऐसा बक्स है कि मजे से लोहे की अलमारी में आ जायगा ।”

उसी समय अलीभाई बली जी को चिट्ठी लिख दी कि ४२) वाला गहने का बक्स बी० पी० के जरिये हमारे नाम फौरन भेज दें । खानम ने इस चिट्ठी को उसी दम डाक में डलवा दिया । अब लोहे की अलमारी की बातें हुईं । अभी थोड़े दिन हुए, जब खानम की एक सखी ने ६५) की लोहे की अलमारी लुधियाने से मँगाई थी । उनसे कह देंगे कि एक हमें भी मँगा दो—भगड़ा खतम हुआ ।

इसके बाद खानम से दूसरी मजेदार बातें छिड़ीं । वह बोली कि कपड़े सादे और हलके होने चाहिए, भारी-भारी मँहगी साड़ियाँ पहनने से कोई फायदा नहीं । यह सब फिजूल है । सादे कपड़े हों, और फिर हारे के बुन्दे पहन लिये जायें, तो वह भारी कपड़े पहनने से कहीं अच्छा है ।

इसके बाद ही हीरे के बुन्दों और हीरे के और गहनों की बातचीत हुई । मैं भी मान गया कि हीरे का गहना सबसे अच्छा है । मेरे पास रुपया होता, तो मैं हाथ और गले के लिए भी हीरे का गहना ले देता; मगर मैंने दिल में सोचा कि आज कान का गहना हो गया, खुदा चाहेगा, तो कल हाथ और गले में भी हीरे का गहना हो जायगा ।

[४]

मुझे कचहरी जाने की जल्दी थी । शायद हीरे के बुन्दों की खुशी में खानम ने बादामी पराठे पकाये थे । खूब पेट भर कर खाये, और बराबर हीरे के बुन्दों की बातें होती रहीं । चलते वक्त खानम ने कहा—“देखो, भूलना मत, बुन्दे जरूर लेते आना ।” फिर चलते चलते मुझे फिर एक बार पुकारकर

कहा—“दस-पाँच की लालच में ऐसा न करना कि बुन्दे छोड़ आओ।”

मैंने कहा—“जरूर लेता आऊँगा। कचहरी में आज कोई काम भी नहीं है, दो-तीन बजे तक आ जाऊँगा।”

खानम की मुहब्बत को देखिये, बरामदे तक रोज की तरह पहुँचाने आयी; मगर आज वह मुझे कैसे देख रही थी ! प्रेम की प्रसन्नता से चेहरे पर दमक थी, और आँखों में चमक। मैंने उसको देखा, तो उसका भाव मेरे दिल में डूबा जा रहा था।

मेरी मोटर-साइकिल एक मोड़ पर लड़ते-लड़ते बची। उसे बचाने में तार के खम्भे से पहिया टकरा गया, मगर मैंने इञ्जन रोक दिया था और ब्रेक दबा दिया था। अगर ऐसा न करता, तो बड़ी करारी टक्कर होती है। बात यह थी कि मोड़ पर एक अकेला ठेला आ रहा था, और इधर से मैं चला जा रहा था—सोच में डूबा हुआ... खानम की सुन्दर मूर्ति मेरे सामने थी। उसके कानों में हीरे के बुन्दे लटक रहे थे। ऊपर ताकता तो ऊपर पेड़ की तरफ़ देखता तो पेड़ पर—चारों ओर खानम का सुन्दर मुखड़ा, कानों में हीरे के बुन्दे दमकाता, हँसी से खिला और खुशी से चमकता हुआ मेरे सामने आ जाता। मैं इसी में इतना डूबा हुआ था कि टक्कर होते-होते बची। कचहरी पहुँचा। एक खम्भे पर एक बड़ा-सा विज्ञापन का पोस्टर चिपका था, जिसपर किसी स्त्री की तसवीर बनी थी। देखते ही एक दम से यह तसवीर खानम की हो गयी, और आँखों ने ऐसा धोखा खाया कि मुझे यही मालूम हुआ, मानों वह हीरे के बुन्दे पहने है।

साइकिल खड़ी करके बात-रूम में पहुँचा। दो-चार सार्थी

वकील मिले । हम सब नये वकील थे; मगर मैं अपने-आप को जरा बड़ा वकील समझ रहा था । दो-चार बातें करने के बाद मुझे खयाल हुआ कि इन लोगों से हीरे के बुन्दों की बातचीत करनी चाहिए । बड़ी चालाकी और तरकीब से वातूनी वकीलों को पहले मैंने गहने की बातों में लगाया । गहने की बातें छेड़ने के बाद हीरे के गहने की बातें शुरू कीं, तब कहीं जाकर खानम के हीरे के बुन्दों की बात की । माथियों पर खूब रोव गाँठा और खूब धोस जमाई, जिससे दिल बहुत खुश हुआ । फिर इसके बाद जिस-जिससे भी हो सका, किसी-न-किसी तरह बात में बात निकालकर, शेखी मारकर कह दिया कि एक मुकदमा पाँच सौ रुपये का मिल गया है, और आज ही घरवाली के लिए साढ़े चार सौ के हीरे के बुन्दे मोल लूँगा । बुन्दे साढ़े तीन सौ ही के थे, और शायद ताँज सौ तक मिल जाते, मगर मैंने जान-बूझकर सबसे साढ़े चार सौ बताये । जब इस तरह खूब तवीयत खुश कर चुका, तब यह सोचा कि मुन्शी जी से मिलूँ और रुपये के लिए पूछूँ तो कि पाँच सौ में से कितने वसूल हो गये और किनने बाकी हैं । यह मैं जानता ही था कि मुन्शी जी बड़े चालाक आदमी हैं । फीस का रुपया सब-का-सब पेशगी वसूल कर लेते हैं । बड़े होशियार हैं, कौड़ी बकाया नहीं छोड़ते ।

मुन्शी जी भवें सिकोड़े खफगी और गुस्से के देवता बने सबेरे की बातों से जले-भुने बैठे थे । मैं पास पहुँचा, तो मेरी ओर देखा भी नहीं, बल्कि नाक से गरम-गरम साँस तेजी से छोड़ने लगे ।

अगर मुझे अपने मुक्किल साहब यानी वह सेठ जी जिन्होंने मुझे पाँच सौ का मुकदमा दिया था, राजा इन्द्र के

अखाड़े की परी से ज्यादा सुन्दर और खूबसूरत दिखाई देते थे, तो मुन्शी जी अपनी होशियारी और काबलियत से वायस-राय से ज्यादा काबिल और लायक मालूम हो रहे थे, क्योंकि एक मामूली से मुकदमे में पाँच सौ की फीस तय कर लेना, ऐसी-वैसी काबलियत का काम नहीं ।

मुन्शी जी से इधर-उधर की दो-चार बातें जो कीं, तो उन्होंने टेढ़े तिरछे और चटपटे जवाब दिये । आखिर मैंने उनसे पूछ ही लिया कि सेठ जी पाँच सौ में से कितने रुपये दे गये और कितने बाकी हैं ?

अब मैं क्या बताऊँ कि मेरी क्या दशा हुई, जब मुन्शी जी ने कड़ुवी सूरत बनाकर, गुस्से से तोते की तरह आँखें फ़िराकर टेढ़े मुँह से जवाब दिया । मेरी नब्ज ढीली पड़ गई; दिल रुकता-सा मालूम हुआ; सारा बदन ठंडा पड़ गया, क्योंकि, हाय मेरी किस्मत ! वह मुकदमा था तो पाँच सौ का जरूर—बेशक पाँच सौ ही का था—मगर पाँच सौ रुपये का नहीं, बल्कि दफा पाँच सौ ताजीरात हिन्द का था ! मुन्शी जी का यह कहना—“जी हाँ, पाँच सौ रुपये फीस का मुकदमा आपके लिए अब मैं चीफ-जस्टिस को लिखकर हाईकोर्ट से मँगाऊँगा ।” उफ...

मेरे ऊपर मानो बिजली गिरी । उठता हूँ, तो उठा नहीं जाता । हिलता हूँ तो हिल नहीं जाता । बोलता हूँ, बोला नहीं जाता । पाठक ! पाँच सौ की चोट बुरी होती है, और फिर एक नये वकील के लिए !

रोती-बिसूरती सूरत बनाये, बूढ़ों की तरह वहाँ से ठण्डा साँस भरकर उठा । सोचा, किधर जाऊँ और क्या करूँ । इतने में एक साथी दौड़े हुए आये और बोले—“यार, तुम

पट्टी

पट्टियाँ एक तो वे होती हैं, जो चारपाइयों में लगाई जाती हैं, दूसरी वे जो सिपाहियों के पैरों पर बाँधी जाती हैं। फिर और भी बहुत किस्म की पट्टियाँ हैं; लेकिन मेरा मतलब यहाँ उस पट्टी से है, जो फोड़ा फुँसी और चोट-चपेट के सिलसिले में डाक्टरों के यहाँ बाँधी जाती हैं।

X

X

X

मेरी स्त्री की मिलनेवालियों में एक लेडी डाक्टर थीं मिस ओरमा लिण्डसे। मैं ससुराल जानेवाला था। मिस ओरमा ने मुझसे कह दिया था कि जिस रोज तुम ससुराल जाओ, मुझसे जरूर मिल लेना, इसलिए मैं सुबह तड़के ही मिस साहवा के बँगले पर पहुँचा।

यह बतलाने के पहले कि बँगले पर क्या हुआ, दो-एक बातें मैं कुत्तों के बारे में कहना चाहता हूँ। वह छोटे-छोटे कुत्ते, जो न्यूयॉर्क कहे जाते हैं और बँगलों में अदबदा के पाले जाते हैं, चाहे कटखने न हों, मगर इधर आप बँगले में दाखिल हुए और इधर ये सीधे आपके ऊपर !..... जाहिरा तौर पर काट खाने के लिए, मगर वास्तव में आपको दौड़ाकर और रपटाकर चित करने की नीयत से निकले। अतः आप सच मानिये कि यही हुआ। मिस ओरमा के तीन छोटे-छोटे कुत्तों ने इस बुरी तरह मेरे ऊपर हमला किया कि मेरे होश जाते रहे। गुलाब के एक काँटों-भरे दरख्तपर मैंने ऐसे पैर रख दिया, जैसे कोई रेशमी गद्दे पर रखता है ! वहाँ फँसकर बदहवासी के साथ गमले फाँदा। एक फाँद गया, दो फाँद गया, तीसरे में पैर ऐसा लगा कि मुँह के बल गिरा और साथ ही कुत्ते सिरपर ! जनाब,

क्या बताऊँ, किस तरह बेतहाशा फिर उठा कि कुत्तों ने ऐसी टाँग ली कि एक कुत्ते पर पैर पड़ गया, और अबकी सड़कपर जा गिरा। वहाँ से घबराकर सीधा उठकर बरामदे में आया। कुत्ते पीछे-पीछे थे। चिक उठाने की मोहलत किसे थी; चिक-समेत, तोप के गोले की तरह, कमरे में दाखिल ! उधर से मिस साहबा बदहवास चीखती आ रही थीं। मैं इस बुरी तरह मिस साहबा से जाकर टकराया कि वे कुरसीपर चीख मारकर गिरीं। मैंने सहारा देकर जल्दी से उठाया। कुत्ते खड़े अब दुम हिला रहे थे—वह मूजी जो पलभर पहले मेरी जान लेने को तैयार थे !

[२]

जब जरा होश दुरुस्त हुए, तो हम दोनों ने बातें करनी शुरू कीं। मिस साहबा ने अपनी सहेली से मिलने का आग्रह प्रकट किया। कुछ और उधर-उधर की बातें कीं। इतने में मिस साहबा की निगाह मेरे हाथ पर पड़ गई, जो सड़क पर गिरने से रगड़ खाकर, अंगूठे की जड़ के पास से छिल गया था।

“ओह...यह...यह क्या ?” यह कहकर उन्होंने मेरे इस नाममात्र के जखम की परीक्षा की, और कहा—“मैं अभी इसे लोशन से धोकर ड्रेस किये देती हूँ।”

मैंने कहा—“अजी रहने दीजिए, कोई बात भी हो।”

मिस साहबा परेशान सूरत बनाकर बोलीं—“मिर्जा साहब, यह मामूली बात नहीं, इसको फौरन ड्रेस करना चाहिए, वरना कहीं.....”

“वरना कहीं ?”—मैंने पूछा।

मिस औरमा ने भौहें चढ़ाकर और भयभीत-सी शक्ल बनाकर—“टिट...टिटनेस।”

कुछ और रोशनी डालूँ। अब मैं तंग आ गया था। टिटनेस के नाम से गुस्सा आता था। खैर, ज्यों-त्यों करके बला टली।

[४]

शाम को चार बजे की गाड़ी से रवाना होनेवाला था। इस बीच में लोगों ने मेरा नातका बन्द कर दिया। अब मैं सिर्फ यह कहकर टालना चाहता था कि चोट लग गई है; मगर जनाब, पूछने वाला बिना टिटनेस की बातचीत के भला काहे को मानता। वह फौरन कहता कि फलाँ साहब से सुना कि टिटनेस होने का डर है। मजबूरन जिस तरह बन पड़ता, जान छुड़ाता।

ताँगा आया। असबाब लादा, ताँगेवाले ने भी पूछा—“मियाँ, हाथ में पट्टी कैसी?” मैं घुन्नाकर रह गया। स्टेशन पर अलबना मेरा नाक में दम आ गया। बहुतों को यह कह कर टाला कि चोट लग गई है। बहुतों को कुछ-न-कुछ टिटनेस का हाल बताना पड़ा। गाड़ी छूटने से पहले ही एक सज्जन से इस विषय पर कुछ बुरा मनौअल भी हो गई।

“अरे मियाँ, यह हाथ में पट्टी कैसी है?”—उन्होंने पूछा।

“मामूली चोट लग गई है?”

“कैसे लग गई?”

“सड़कपर गिर पड़ा था, खराश आ गया।”

“फिर कोई बात तो नहीं?”

“कोई बात नहीं!”

“मगर अब्दुलहमीद साहब मिले थे, वे कहते थे कि खुदा न करे, टिटनेस हो जाने का डर है। यह टिटनेस क्या होता है?”

अब मुझे ऐसा गुस्सा आया कि उनका मुँह नोंच लूँ,

क्योंकि वे केवल मुझे तंग कर रहे थे ! आप ही विचार कीजिए कि पहले तो उन्होंने शुरू से पूरी तफसील पूछी, यद्यपि वे अब्दुलहमीद साहब का अच्छी तरह मगज खा चुके थे, और फिर टिटनेस को पूछते हैं कि क्या होता है, गोकि खूब अच्छी तरह पूछ चुके थे ।

मैंने जलकर कहा—“टिटनेस एक तरह का बुखार होता है, जिसमें छींके आती हैं ।”

“हैं !” वे बोले—“अब्दुलहमीद साहब नो कहते थे कि जहरबाद होता है ।”

“माफ कीजिए,”—मैंने कहा—तो फिर आप जब जानते हैं कि टिटनेस क्या बला है, तो मेरा दिमाग चाटने से फायदा ?”

प्रत्यक्ष है कि ऐसी बातचीत का फल क्या हो सकता है । वे बुरा माने, मैं और भी बुरा माना, जिससे वे और भी बुरा माने ।

[३]

मेरे डब्बे में वैसे तो कई आदमी थे, मगर बिल्कुल पास ही बैठनेवाले एक तो जमींदार-सूरत लखनऊ की तरफ के मुसलमान थे, और एक साहब कुछ फौजीनुमा मालूम होते थे । खाकी कमीज और नेकर पहने थे । इनके पास ही एक मेरे शहर के मारवाड़ी महाजन बैठे थे । इनके अलावा दो-एक और सज्जन भी थे । गाड़ी चली । दो-एक इधर-उधर की जबरदस्ती की बातें पूछकर इन फौजी सज्जन ने आखिर पूछ ही लिया—“आपके हाथ में यह पट्टी कैसी बँधी है ?”

मैं कह नहीं सकता कि मैं दिल में कितना भुनाया । मज-बूरन कह दिया—“जखम हो गया है ।”

च० क० दू०—१२

“कैसे ?”—उन्होंने पूछा ।

मारे गुस्से के मैंने कहा—“वात दरअस्ल यह है कि मगर ने काट खाया है ।”

“मगर ने ! मगर !...मगर ने काट खाया ?”

“जी हाँ ।” मैंने लापरवाई से कहा ।

“कैसे ?”—उन्होंने बड़ी उत्सुकता से अब व्यौरा पूछना चाहा कि मैं किस तरह पानी या दलदल में घुसा, मगर से कैसे सावका पड़ा आदि । मगर मैंने तंग आकर दूसरी तरकीब सोचा ।

“मुँह से काट खाया ।” मैंने कहा ।

“जी हाँ,”—उन्होंने सिर को ऊँछ हिलाते हुए कहा—“मुँह से तो काटा ही होगा, मगर कहाँ पर आखिर...?”

जहाँ चोट लगी थी और पट्टी बँधी थी, मैंने दूसरे हाथ से वह स्थान पकड़कर कहा—“यहाँ पर काट खाया, और मुँह बाकर काट खाया ।” मैंने हाथ से मुँह दबाने की नक़ल करते हुए कहा ।

“नहीं साहब,”—वह दूसरे ज़मींदार साहब बोले—“इनका मतलब यह है कि आखिर वह कौन मुक़ाम था, जहाँ मगर ने काट खाया; क्या घटना हुई थी ?”

मैंने उसी तरह रखे मुँह से कहा—“मैंने कहा न कि इसी मुक़ाम पर हथेली के पास ।” मैंने फिर दोबारा उस जगह को पकड़कर दिखाया—“इसी मुक़ाम पर मूजी ने काट खाया, और कोई घटना तो हुई नहीं ।”

कुछ चिड़चिड़ाकर उन्होंने कहा—“अजी हज़रत, किस्सा सुनाइये कि किस तरह, कौनसी नदी या तालाब में, क्या मामला पेश आया, जो मगर ने आपकी हथेली काट खाया ?”

“अब मैं समझा, आपका क्या मतलब है।” मैंने कहा—
 “सुनिये, घटना वास्तव में यह हुई कि हमारे पड़ोस में एक नदी है। वहाँ एक बड़ा-सा मगर रहता था। एक रोज़ मैंने एक बड़ा ज़बरदस्त मछली का-सा काँटा कोई दस सेर वज़न का बनवाया। उसे एक मोटे तार के रस्से में बाँधकर पेड़ से बाँध दिया। काँटे में गोشت लगाकर नदी में डाल दिया। उस में मगर रात को आठ बजकर तीन मिनट पर फँस गया।”

इस संक्षिप्त वृत्तान्त को भला लोग काहे को पसन्द करते ?
 चारों ओर से सवालों की झड़ी बँध गयी।

किसी ने पूछा, साहब, काँटा कैसी नोक का था; किसी ने कहा, क्या वह निगल गया ? ग़रज़ यह कि तरह-तरह के सवाल पैदा हो गये। मजबूरन मुझे मगर के शिकार के कुछ और किस्से गढ़कर सुनाने पड़े। अब मैंने अपने बयान को कहानी का रूप देकर सुनाना शुरू किया, और उस स्थान पर पहुँचा कि दस-बारह आदमियों ने रस्सा खींचा। मगर ने जोर से तड़पकर पलटा खाया ही था कि दूसरा स्टेशन आ गया।

स्टेशन आने से भला मेरी कहानी क्या रुकती, लेकिन यहाँ यह मुसीबत आई कि एक सज्जन ने कोई छकड़ा-भर असबाब के साथ इसी डब्बे पर हमला किया। इस घमा-घमी के साथ उन्होंने और उनके नौकरों ने असबाब का फेंकाफेंक और ठूँसाठूँस की कि सबको अपने-अपने बोरिये-बिस्तरे और जगह की पड़ गयी। ये हज़रत शायद पुलिस के सब-इन्स्पेक्टर थे, और किसी दूसरे थाने पर तबादिले के सिलसिले में लद रहे थे। हट्टे-कट्टे जवान थे, और उनकी मूँछें बड़ी-बड़ी थीं। सामने ही दूसरों की जगह पर कब्ज़ा करके

इधर-उधर सरका कर बैठ गये, और फौरन ही मुझे पान पेश किया। मेरी कम्बख्ती कि मैंने धन्यवाद के साथ ले लिया। इसके साथ ही फौरन मौसम की शिकायत की। मैं जानता था कि अब यह मुझे छेड़ेंगे। हुआ भी ऐसा ही। मौसम की शिकायत के बाद ही उन्होंने भी आखिर को गोला दे मारा।

“क्यों जनाब, यह आपके हाथ में पट्टी कैसी है ?”

सूखे मुँह से मैंने कहा—“परसों काले साँप ने काट खाया।”

“अरे काला साँप !”

मैंने कहा—“जी, काला।”—यह कहकर मैंने इधर-उधर के उन लोगों पर नज़र डाली, जिनको मैं मगर की कहानी सुना रहा था, और जो शायद अब बाकी कहानी को पूरा करने की फरमाइश करने ही वाले थे। किसी के चेहरे पर गम्भीरता थी, तो किसी के चेहरे पर मुस्कराहट।

“कहाँ ? कैसे ? कहाँ काट खाया ? कैसे काट खाया ? कब ?”

“मैंने कहा तो कि परसों काट खाया !”

“कहाँ ? आप क्या कर रहे थे ?”

“यहाँ।” मैंने पट्टी पर हाथ से बताते हुए कहा—“यहाँ काट खाया। मैं खाना खा रहा था।”

“तो फिर क्या हुआ ?”

“फिर साँप ने काट खाया।”—मैंने सादगी से कहा।

“कैसे ?”

“ऐसे”—मैंने उँगली से चुटकी लेकर साँप के काटने की नक़ल बनाते हुए कहा—“ऐसे काट खाया।”

“अजी साहब, यह मतलब नहीं, आखिर क्या हुआ था ? साँप कैसे आया, और वाक़या पूरा-पूरा क्या है ?”

इसके बाद मैंने अपने साँप काटने का किस्सा बयान करना शुरू किया, जो बदकिस्मती से इस वक्त मुझे याद नहीं; मगर यह अच्छी तरह याद है कि मैंने अपना किस्सा बहुत ही अच्छी तरह से पूरा किया था ।

जो लोग मगर का किस्सा सुन चुके थे, उनके सवालों का मैंने निहायत सादगी से जवाब दिया । मैंने कहा—“मगर भला किस तरह काट सकता है ? मुझे मगर ने कभी नहीं काटा ।” मेरी गम्भीरता पर पहले तो वे कुछ मुसकराये, फिर उनके चेहरों से कुछ संशय प्रकट हुआ; मगर मैं प्रत्यक्ष रूप से बहुत गम्भीर था । मेरे दिल को आराम पहुँच रहा था । दिन-भर के सही उत्तरों से मन में जो जलन पैदा हो गयी थी, वह मिट गयी । पहले की बनिस्बत अब मैं खुश था । अब मैं एक निस्पृह भाव से अखबार पढ़ने में व्यस्त हो गया ।

कई स्टेशन निकल गये । कोई नया आगन्तुक ऐसा न आया, जो मेरी पट्टी का हाल पूछता । किसी ने ठीक ही कहा है कि “कभी नाव गाड़ी पर, कभी गाड़ी पर नाव ।” अब मेरा नम्बर था । मैं इस प्रतीक्षा में था कि कोई मुझसे पूछे तो; मगर किसी ने न पूछा । यहाँ तक कि मैं घर यानी ससुराल पहुँच गया ।

[४]

रात को साढ़े ग्यारह बजे होंगे । सास साहबा के सामने जाकर अदब से फर्श पर बैठ गया । सलाम-दुआ के बाद पहला सवाल उन्होंने जो किया, वह यह था—“खैर तो है ? यह तुम्हारे हाथ में पट्टी कैसी बँधी है ?”

“गोली लग गई है ।”—मैंने जलकर कहा ।

“या अली ! गोली !” वे चौंककर बोलीं—“गोली, खुदा खैर करे, कैसे लग गई ?”

“बन्दूक की नाल से ।” मैंने कहा ।

“बेटा, आखिर क्या हुआ था, कैसे बन्दूक चल गई ?”

क्या बताऊँ कि मुझे इस सवाल से अब कैसी जलन हो रही थी । अब मालूम हुआ कि किसी ने ठीक ही कहा है—

“नहीं दौड़ता है घोड़ा हर एक जगह पर ।”

मुझे जलन हो रही थी, क्योंकि छतवाले कमरे पर बिजली की रोशनी गायब थी, जिसका अर्थ यह था कि कमरे वाली, शायद नहीं, बल्कि निश्चितरूप से, अनुपस्थित थी । इसलिए जवाब देने के बजाय मैं मन में सोचने लगा कि शायद अपने मामा के यहाँ गई होगी । मेरे एक मूर्ख मित्र ने सलाह दी थी कि बिना पहले से खबर दिये, सहसा ससुराल पहुँचना और वहाँ श्रीमती से मिलना विशेष आनन्ददायक होता है । जवाब देने के बजाय मैं मन-ही-मन उन्हें मूर्ख कह रहा था कि एका-एक चौक-सा पड़ा । एक सूखा संचिप्त-सा किस्सा सुनाया कि बन्दूक अचानक चल गई और गोली छूती हुई निकल गई, मगर सास साहबा ने मेरी जान खाना शुरू किया ।

इसी बीच में छोटी साली साहबा लजाती-बलखाती आई । मैं बयान नहीं कर सकता कि उस समय मैं कैसी उलझन में था । सास साहबा दुनिया-भर की बातें तो कर रही थी; मगर यह न बताती थी कि मेरी श्रीमती हैं कहाँ—अपने मामा के यहाँ, वा घर में । खैर, बातचीत में छोटी साली से इतना तो मालूम हुआ कि घर में नहीं हैं । सास साहबा बोलीं—“... दोनों गई थीं । यह तो शाम ही को लौट आई, और उसने खाना खाकर आने को कहा था, मगर रह गई ! बहन ने पकड़ लिया होगा । दोनों में बड़ी मुहब्बत है, अकसर बुला भेजती है ।”

यह कहकर सास ने मेरी श्रीमती की ममेरी वहन की मुहब्बत का कानों में चुभने वाला किस्सा शुरू किया और इधर मैंने मुँह बनाया और लापरवाही से जम्हाइयाँ लेनी शुरू की, क्योंकि मुझे अपनी श्रीमती से इस तरह की मुहब्बत करने-वालियों से सख्त नफरत है। खैर, शुक्र है कि सासजी मेरा मतलब समझ गईं और कहने लगीं—“अच्छा, अब जाओ, सो रहो।”

मैं थके हुए पैरों से अँधेरे में अनमने भाव से जीने पर चढ़ा। छत पर पहुँचते ही बत्ती जलाई। नौकरानी कम्बख्त ने मेरा बिस्तरा ज्यों-का-त्यों पलंगपर रख दिया था। मैंने खोलकर बिछाया। बत्ती बुझाई, और लेटकर बहुत जल्द सो गया।

आखिरी रात का पहला हिस्सा और गर्मियों की ठंडी हवा में मतवाली नींद ! लेकिन कुछ आहट, कुछ गर्मी और खुशबू—इस नींद को भी गायब कर सकती है। मैं बिजली की रोशनी में खड़बड़ाकर उठा—“कौन ?” मेरे मुँह से निकला। जवाब देनेवाली मुस्करा रही थी—वह मेरी मौजूदगी पर और मैं उसकी मौजूदगी पर ! गलती मेरी ही थी। कमरे के दूसरे बाजू के सामने ही तो चारपाई पड़ी थी। मैंने देखी ही न थी। न दुआ, न सलाम, सीधे—“यह हाथ में आप के क्या हुआ, पट्टी कैसी बँधी है ?”

या खुदा ! भला क्या जवाब देता ? मैंने कहा—

“नज़र से तीर चलाकर मुझे किया घायल।

सवाल फिर ये तुम्हारा कि यह हुआ क्या है !”

और उसी वक्त से तै कर लिया कि अब पट्टी कभी न बाँधूँगा। खुदा इस इरादे की शर्म रखें।

यह किसकी तसवीर है

अगर यह सिद्धान्त स्थिर हो जाता कि शादी से पहले किसी तरह लाजिमी तौर पर लड़की लड़के को देख ले और लड़का लड़की को, तो जनाब, आप सच मानिये कि कम-से-मेरी तो शादी ही नामुमकिन थी।

शादी से पहले मैं इस सिद्धान्त का कट्टर हामी था। जिस लड़की से पहली बार मेरी सगाई तै हुई, उसे मैंने किसी-न-किसी तरह ताक-भाँककर देख लिया। बेहद पसन्द आयी। उसके बाद वह शौक चर्चाया कि वह भी किसी तरह मुझे देखे। यह भी मुमकिन हो गया। मगर जनाब, साथ ही उसका नतीजा यह निकला कि उस शोख और खूबसूरत लड़की ने मेरे बारे में अपनी एक सहेली को जो-कुछ लिख मारा, उसका हूबहू उद्धरण यह है—“...आँखों के गिर्द घिरे, कमर झुकी पीनक में रहते हैं। हाँ यह मैं मानती हूँ कि पढ़ने-लिखने में तेज हैं, समझदार हैं, खुश तबीयत हैं, लेकिन मेरी समझ में साथ ही अफीमची भी हैं। खुदा की कसम, तुम्हीं बता कि यह भी कोई हुलिया है कि छोटा-सा कद उस पर कुबड़ी कमर, ऐनक लगाये...भँवें चढ़ाये...चले जा रहे हैं, गर्दन झुकाये, टटोलते हुए ! चेहरे को देखो तो जर्द चपटी-सी नाक, बदरंग मटीला चेहरा, मुर्दनी छाया हुआ—मालूम दे जैसे हड्डियों पर खाल मढ़ दी हो। फिर मोटे-मोटे होंठ और जगह-जगह पर चेहरे पर कोण, त्रिभुज, आयत, चतुर्भुज कोने और कंगूरे निकले और खुदा भूठ न बोलवाये तो गालों में इसी उम्र में ऐसे गढ़े कि दोनों तरफ आध-आध पाव चने आ जायँ। ...यह हिन्दोस्तान है। मेरी शादी ज़बरदस्ती कर दी गई तो यह सब

सर आँखों पर; मगर दिल की पूछती हो तो बता चुकी, न मैं रंजीदा हूँगी और न खुश, क्योंकि यही दस्तूर है... इत्यादि ।”

खत मैंने पढ़ा । आत्म-सम्मान भी तो आखिर कोई चीज़ है । लड़की को मैंने खूब अच्छी तरह देख लिया था । मेरा दिल बैठ गया । आइना उठाकर देखा और चुपके से रख दिया । अजीब खींच-तान में था । करूँ या न करूँ ?—ऐसी लड़की हाथ से जाने का एक तरफ़ अफसोस था और दूसरी तरफ़ गौरत तकाज़ा करती थी । बहुत खींच-तान के बाद तै कर लिया कि ऐसी नालायक लड़की से हर्गिज़-हर्गिज़ शादी न करूँगा, जो खुद मुझे पसन्द नहीं करती । चुनांचे चुपके से मैंने बहन जी को वह खत दिखा दिया । वे खत को देखते ही आग-बबूला हो गईं । खुदा-खुदा करके उन्हें चुप किया । उन्होंने मुझको यक़ीन दिलाया—“लड़की बदतमीज़ है, फूहड़ है, किसी करम की नहीं, मैं खुद यही चाहती थी ।” फिर उन्होंने दरजनों नाम ले डाले ।

इसके बाद दो लड़कियाँ मैंने नापसन्द कर दी; क्यों कि वे बाहरी खूबसूरती में पहली-जैसी नहीं थीं । उसके बाद तीन ने मुझे नापसन्द कर दिया और तीसरी तो इस क़दर बदतमीज़ निकली कि एन्ट्रेस पास होने और नई सभ्यता में शिक्षित होने पर भी उसने शरारतन मेरा नाम रोज़ीनैन्ट Rosinant रख दिया । जाहिर है कि इस पर मेरा खून कैसा खौला होगा । इसके बाद दस-पन्द्रह जगह चुनाव की कोशिश की; लेकिन नतीजा यह हुआ कि या तो मुझको किसी ने पसन्द न किया, या जिन्होंने मुझे पसन्द किया, यानी जिन्होंने मुझे नापसन्द नहीं किया—उन्हें मैंने नापसन्द कर दिया । फल यह हुआ कि मैं खुद तंग आ गया और बहन जी भी परेशान हो

गई, क्योंकि मुझे चुपके से लड़की दिखाने का इन्तजाम उन्हीं के सिपुर्द था। हम बहन भाई की तजबीज यह थी कि लड़की पसन्द आ जाने पर सगाई की बातचीत हो। अब तक जितनी लड़कियाँ मैंने नापसन्द की थी, वे सब मुझसे कहीं ज्यादा खूबसूरत थीं; लेकिन जनाब, मैं तो सब से खूबसूरत चाहता था। किस्सा मुस्तसर यह की जल्द ही मुझे मालूम हो गया कि यह सिद्धान्त ही एक सिरे से गलत है कि लड़की लड़के को देखे। लड़के का लड़की को देख लेना ही काफी है, और यही कामयाबी की कुंजी है।

बस, इसी सुनहरे सिद्धान्त पर चलने से ही मेरी मनचाही शादी मुमकिन है। सगाई तै होने के बाद ही मैंने अपनी तमाम फोटो हिफाजत से छिपा दी, ताकि हर एक आने-जाने वाली की नजर में न पड़े और उन्हें उड़ा ले जाने का डर भी न रहे। क्योंकि बहन जी ने कह भी दिया था—“अबकी मरतबा अगर तुमने अपनी देखा-भाली कराई; तो मैं फिर कोई दिल-चस्पी न लूँगी।” मैं भी अच्छी तरह जानता था कि अगर यह लड़की मुझे देख पावेगी, तो ताज्जुब नहीं कि हुसक जाय या मेरे ऊपर तरह-तरह के रिमार्क पास करके मुझे ही मजबूर कर दे कि मैं उसकी तरफ से फिर जाऊँ। खैर इसी किस्म की तमाम एहतियात बरतने पर मुझे कामयाबी मिली और मेरी शादी होगई, लेकिन लड़का-लड़की एक दूसरे को पहले देख लें, इस सिद्धान्त को तिलांजलि देकर।

[२]

मुझे अगर अपनी बीबी की तरह-तरह की तसवीरें खींचने और खिचवाने का शौक था, तो कोई ताज्जुब नहीं। तसवीरें खिचवाई, जगह-जगह से इनलार्ज करवाई, हर रुख से बिठाकर

तसवीरें लीं, हर लिबास और तर्ज में तसवीरें खींचीं। उम्दा-उम्दा फ्रेम लगवाये, तसवीरों में तरह-तरह के रंग भरवाये; गरज फोटोग्राफी की हद कर दी और कमरा मेरी बीबी की तसवीरों की चित्रशाला बन गया। लेकिन इस चित्रकारी का नतीजा यह हुआ कि खरबूजे को देखकर खरबूजे ने रंग पकड़ा और मेरी प्यारी बीबी को अपने दिलरुबा शौहर की तसवीरें खींचने-खिंचवाने का शौक लग गया। अब तो खुदा हाफिज है।

×

×

×

खानम (श्रीमती जी) ने मेरी मौजूदा तसवीरों का गौर से देखकर कहा—“इनमें से कोई भी ठीक नहीं, बस घर का खींची हुई हैं न।”

भाभी जी ने मुसकरा कर ताने से कहा—“यह घर की खींची हुई नहीं हैं ! ज़रा आँखों से देखो।”

“घर की खींची हुई नहीं हैं तो किसी ऐसे-वैसे ने खींची है।” खानम बोली।

भाभी जी ने कहा—“नीचे नाम लिखा है—ऐसे मशहूर फोटोग्राफ की दूकान की...”

खानम झल्लाकर बोली—“ऊँची दूकान फीका पकवान, सब बेगार टालते हैं। इससे अच्छी तो खुद मैंने खींची है !”

“आखिर इनमें खराबी कौन सी है ?” भाभी ने खानम से पूछा—“साफ तसवीर है, बाल-बाल साफ आया है। यह देखो आँख के नीचे की हड्डी, ज़रा भाई, उधर मुँह फेरना तो”—मैंने मुँह फेर लिया तो बोली—“यह, यह, यह ? देखो आँख के नीचे की हड्डी जैसा साफ इस तरफ से दीखती है, वैसी ही तसवीर में है.....और यह देखो, आँख से नीचे का ढाल

बराबर चला आ रहा है और ठोढ़ी के पास.....यह देखा. उभरी हुई हड्डी कैसी साफ है ।”

इस तरह से भाभी ने मेरे चमरखे चेहरे के चढ़ाव-उतार का भाष्य करके साबित कर दिया कि तसवीर हू-बहू ठीक है । नक़ल एक दम असल जैसी है । खानम को बेहद बुरा मालूम हुआ । उसने तसवीर भाभी के हाथ से झपट ली और जल-भुनकर कहा—“अच्छा बहन, मैं कुछ तुमसे थोड़े कह रही हूँ, जो बहस पर तुल पड़ी ।”

मेरे एक दोस्त थे, जिनसे मेरी बहस रहती थी कि मैं तगड़ा था । वहाँ जाड़ों में हम दोनों बादाम का हलवा खाते थे और छिपे-छिपे दंड पेलते थे, फिर दोनों पहलवान अपने-अपने हष्ट-पुष्ट शरीर को नापते और स्टेशन पर जाकर अपने को तौल कर मुक्काबला करते थे । कभी मैं एकमन पाँच सेर की निकलता था और वे एक मन छै सेर के, कभी वे सेर-आध-सेर घट जाते थे । मेरी तसवीरों में कहीं उनकी भी एक तसवीर निकल आई । भाभी ने उसे देख कर कहा—“ज़रा इस चमरखे को देखना...देखकर ही डर लगता है ।”

खानम दिल-ही-दिल में सुलग गयी और फुर्ती से तीसरी तसवीर निकाली और कहा—“ज़रा जेठ जी को देखना, जान पड़ता है, मानो बोरा रखा है । मुझे तो देखकर फुरेरी आती है...ज़रा देखिये तो गर्दन ?” भाई साहब दरस्त बेहद मोटे थे । मगर यह चोट थी दरस्त भाभी के ऊपर और भाभी जी ने एक मुस्कराहट से उसे मालूम भी किया । खानम ने कहा—“न भागने के, न दौड़ने के...”

भाभी ने फौरन प्रतिवाद करते हुए कहा—खैर, दौड़ने-भागने की भले आदमियों की ज़रूरत ही क्या है । मुर्गियाँ

पकड़ने के लिए आदमी नौकर हैं।” परसों भाई साहब के दौड़ने का नमूना मेरे सामने अजीब भद्दी तरह पेश आया था। बात यह हुई कि मुर्गी भाग निकली थी। उसके पकड़ने की एक तरफ से भाई साहब ने कोशिश की थी और दूसरी तरफ से मैंने। यह जाहिर है कि भाई साहब अपने मोटे बदन से कैसा कुछ दौड़ सके थे।

“जो खुद दौड़-धूप न सके, वह आदमी ही क्या है ?” कह कर खानम तसवीरों समेट कर चलती बनी; लेकिन चलते वक्त मुझसे कह गई—“आज शाम को फोटोग्राफर को ले आना।”

फोटोग्राफर आया तो सबसे पहले खानम ने उसका कैमरा देखा। फोटोग्राफी वह जैसी जानती थी मुझे मालूम है; लेकिन ‘कोडक’ और ‘जाइस’ आदि कैमरों के सूचीपत्र देख-देखकर उसे तरह-तरह के कैमरों और लेंसों के नाम जरूर याद हो गये थे और दरअसल की फोटोग्राफी की जानकारी यहीं तक थी।

“आप के कैमरों में कौन-सा लेंस है ?—खानम ने फोटोग्राफरी शान से पूछा। फोटोग्राफर ने किसी ऐसे लेंस का नाम लिया, जो खानम ने ख्वाब में भी न सुना था। खानम के चेहरे पर अज्ञान की एक हल्की-सी घबराहट दौड़ गयी; लेकिन मजा यह की जवाब में ‘अच्छा’ कहकर उसने लेंस उठा लिया और उस पर लिखे हुए नाम को पढ़ने लगी; लेकिन वह बेतुका कम्बख्त जर्मन नाम कोई पचीस-तीस अक्षरों का था, जिसका उच्चारण हम हिन्दोस्तानियों के लिए नामुमकिन-सा है। लिहाजा नाम पढ़ने की बेकार कोशिश करके खानम ने पूछा—“कितने का कैमरा है आपका ?”

“नया मँगाया है।” कुछ धमकी के साथ आँखों में

आँखें डालकर फोटोग्राफर ने कहा—“सिर्फ लेंस चौदह सौ का है ?”

खानम ने आहिस्ता से लेंस फोटोग्राफर के हाथ में दे दिया। फोटोग्राफर बोला—“आप कहेंगी कि लेंस पर इतने दाम क्यों खर्च किये, तो वह इसलिए कि यह लेंस बाल की खाल खींच लेता है।” ‘बाल की खाल’ कहते वक्त फोटोग्राफर साहब ने इस ढंग से हाथ चलाया, गोया वे खुद ही बाल की खाल उधाड़ रहे थे।

लेंस कैमरे पर चढ़ा दिया गया, तब खानम ने प्लेटों पर ध्यान दिया और कहा—“रैपिड हैं न ?” यह कह कर उसने प्लेटों के डिब्बे की तरफ हाथ बढ़ाया। “एक्स्ट्रा रैपिड।”—फोटोग्राफर ने कहा।

खानम को मालूम हो गया कि यह फोटोग्राफर रोब में आने वाला नहीं, वरना इससे पहले जो आया था, उसे तो उसने न मालूम कितना सिखाकर छोड़ा था। कैमरा जगह पर लगा दिया गया। खानम ने मुझे कपड़े पहनने का हुक्म दिया।

मैं कोट पहन कर टाई लगा रहा था कि खानम कमरे में आई—“आप को तो मुझसे जिद है।”—यह कहकर हाथ से टाई घसीट कर उसने वह फेंकी।

“हैं, हैं ?” मैंने मुँह फाड़ा।

“कोई दूसरी टाई ही नहीं जुरती, बस यही एक रह गई है ? सुबह यही, शाम यही...शाम यही सुबह यही ?”

द्रुक्क खोलकर डिब्बे से एक नयी-सी टाई निकाली और उसे हाथ में लेकर उसने कहा—और कोट ? कोट !”

मैंने कोट की तरफ देखा—“क्यों, क्या हुआ ?”

जैसे जानते ही नहीं कि फोटो के लिए काला कोट होना चाहिए।” यह कहकर वह जाड़ों का कत्थई ब्लेज़र निकाल लायी।

“मार डालोगी...गर्मी में”—मैंने ब्लेज़र देखकर कहा—
“खुदा के लिए...आपको तो फिजूल बातें आती हैं, छिन-भर को तो पहनना है।”

यह कहकर ब्रुश किया जाने लगा।

“आइये साहब!”...फोटोग्राफर साहब ने आवाज़ दी।

मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और बाहर को चला। खानम ने जोर से बाँह पकड़कर कहा—“आइने में देखो तो जरा-जरा सिर को सिर को.....” मैंने शीशे में देखा। बाल बिल्कुल ठीक बने थे; लेकिन वैसे नहीं, जैसे खानम को पसन्द थे। वैसे बनाना ही मुश्किल था। मैंने कहा—“खुदा के वास्ते मुझसे वैसे बाल न बनवाओ—औरतों—जैसे।” “आप भी क्या फिजूल बातें करते हैं...नहीं मानेंगे आप...इधर-उधर लाओ...मैं न मानूँगी।”

पकड़ लिया खानम ने आखिर को। मुझे बालों का यह नामाकूल तर्ज सख्त नापन्द था, मगर...कुर्सी पर बैठ गया और मेरी प्यारी नाइन ने पीछे खड़े होकर ठोड़ी पकड़ कर मेरा सिर अपनी गोद से लगाकर बाल बनाना शुरू किया। बड़ी कामयाबी के साथ ब्रुश से नोक-पलक ठीक करके इतमीनान से देखा। अब मुझे जाने की इजाजत थी। मैं जाकर कैमरे के सामने कुर्सी पर बैठ गया। फोटोग्राफर ने कैमरे का ‘लेवेल’ ठीक करके काले कपड़े में सिर डालकर शिस्त लगाई और थोड़ी देर बाद सिर निकाला। “ठीक है न?” खानम ने पूछा और अपना सिर काले कपड़े में डालकर देखा। कैमरे के ताकतवर लेंस ने कुछ और ही कहानी कही। एकाएक

खानम ने सिर निकालकर फोटोग्राफर से कहा—“बिलकुल गलत है।”

“कैसे साहब, कैसे?”

“तुम खुद देखो।”

फोटोग्राफर ने फिर अपना सिर कपड़े में डाला और खानम ने कहा—“देखिये गौर से...दोतरफा चेहरे को बाईं तरफ...” “क्या है?”—फोटोग्राफर ने उसी तरह सिर डाले पूछा।

“किस कदर खराब तसवीर आयगी...और आप कहते हैं, क्या है? ‘पोज़’ ही गलत।” खानम बोली।

“तो साहब गालों का गड्ढा तो आयेगा ही”—सिर निकाल कर फोटोग्राफर ने कहा। इधर मैंने अपने आप एक अज्ञात भाव से बे-अख्तियारी से साथ, जरा गाल फुलाये। जवाब में खानम ने धुन्नाकर फोटोग्राफर को देखा और कहा—“कैसे आप कहते हैं?”

फिर मेरी ओर घूमकर बोली—“आप सीध में उस बकरी की तरफ देखिये।” सामने जरा बाएँ हाथ को बकरी बैठी जुगाली कर रही थी।

अब खानम ने फिर कपड़े में सिर डालकर देखा और हाथ से इशारा करके कहा—“उधर को... उधर-उधर... बस-बस... ऊँह... इतना नहीं। बस! एक जरा इस तरफ... हाँ, सिर ऊँचा... अरे, इतना नहीं... बस-बस, जरा आगे...” यह कहकर खानम ने सिर निकाला और कहा—“बस, अब आप हिलियेगा नहीं। आप तो उस बकरी पर नजर जमाये रहिये।”

अब फिर फोटोग्राफर साहब की बारी आई। उन्होंने सिर डाला और बोले—“यह पोज़ तो उससे भी गलत है।”—

यह कहकर उन्होंने सिर निकाल लिया और कहा—“बालों को आपने नहीं देखा। बे तरह हाईलाइट पड़ रही है। फिर ओठ बाहर निकले मालूम हो रहे हैं। और ठोड़ी की हड्डी... आगे को... फिर कनपटी।” इधर कुछ मेरा भी हाल सुनिये। गर्मी के मारे बुरी दशा थी। उस पर से गर्दन की रग-रग में दर्द, क्योंकि सारी रगें गर्दन का एक खास तरीके पर साधने के लिये मजबूरन तैनात की गई थीं—जैसे खीमा खड़ा करने के लिये डोरियाँ बाकायदा खिंची रहती हैं। ओठ मेरे मोटे हैं। उन्हें मैं खुद ही दाँतों से पकड़े ही नहीं, बल्कि मानों पिये बैठा था। बाँझों की पतली नाजुक रगें इस खींच तान में शल हो चुकी थीं। पिच्ची गालों को थोड़ा फुलाने की कोशिश में मुँह में हवा की थोड़ी साँस रोके बैठा था। इधर यह डर लगा था कि गालों में हवा का परिणाम कम ज्यादा न हो जाय, या एक तरफ का गाल दूसरी तरफ से ज्यादा न फूल जाय। आप खुद तजरबा करें, तो आपको मालूम होगा कि यह काम कितना मुश्किल है। यह सब बातें तो थी ही और फिर बकरी? वह भला निचली काहे को बैठती। खड़ी हो गयी और घूमकर दूसरी जगह जा बैठी। मैंने उसकी जगह अन्दाज ली थी कि यहाँ बैठी है और सोच लिया था कि उसी जगह नजर रखूँगा; लेकिन फिलहाल आँखें बकरी पर थीं। बोल सकता न था, क्योंकि ओठ मसूड़ों से चिपकाये बैठा था।

खानम ने फिर सिर डाला और थोड़ा-सा “इधर-उधर ऊपर-नीचे” करने के बाद फोटोग्राफर से कहा—“अब तसवीर ले लो।”

फोटोग्राफर ने भी भगड़ा खत्म करना चाहा। उधर उसने “रेडी” कहा, इधर मैंने जरा गालों में और हवा पकड़ी। “वन”

दू थी ?” तसवीर खिंच गई। मैंने इतमीनान की साँस ली। खानम ने फोटोग्राफर से तसवीर बढ़िया होने के बारे में बात-चीत की और उसे हुक्म दिया गया कि जल्द से जल्द प्लेट धोकर दिखाये, उसके बाद “प्रूफ।”

शायद आपने स्कूल में हिसाब पढ़ा होगा और आप धन, ऋण, गुणा, भाग, कोष्ठक; वर्गमूल आदि के चिन्हों से परिचित होंगे। ऋण का चिह्न होता है यह ‘—’, जिसको अंगरेजी में माइनस कहते हैं, और छोटे कोष्ठक का चिह्न है यह (), जिसे अंगरेजी में ब्रेकेट’ कहते हैं।

प्लेट धुलकर सूखकर आया तो खानम ने कहा—“यह क्या है ?” नाक और ठोड़ी के बीच में छोटे कोष्ठक के भीतर ऋण का चिह्न मौजूद था—इस तरह (—) ? “मुँह है” फोटोग्राफर ने कहा। और वाकई था भी मुँह ही। मुँहों में मुड़वाता था।

“अरे साहब, यह क्या ?...दोनों तरफ ?” खानम ने कोष्ठकों को दिखाकर पूछा—“यह क्या है ?” फोटोग्राफर ने इसे जान-बूझकर अनजान बनना खयाल किया और जवाब में मेरे चेहरे को देखा। मैंने स्वभावतः एक जम्हाई लेकर एक खास ढंग से मुँह तिकोड़ते हुए उन कोष्ठकों को उड़ाने की कोशिश करनी चाही—यानी ओठ समेट कर ज़रा आगे कर दिये। फोटोग्राफर ने मेरी तरफ उँगली उठाकर कहा—ये भुर्रियाँ हैं। बाँझों के इधर-उधर देखिये।”

“इतना जाहिर तो नहीं है।” खानम ने कहा।

“मेरा लेंस तो बाल से भी बारीक निशान को नहीं छोड़ता, फिर मेरी क्या खता है ? लेंस का तो काम ही यही है कि असल की नक़ल उतार दे।”

“प्रिन्ट लीजिये... प्रूफ लाइये... देखें ।” खानम ने कहा ।

...

...

...

प्रूफ आया और मैं बेचैन-सा हो गया, क्योंकि गाल कृत्रिम ढंग पर फुलाये हुए थे, यह साफ मालूम होता था । “यह क्या ?”—कहकर खानम ने एक प्रत्यकारी दृष्टि मेरे ऊपर डाली—“इसी हरकत की बदौलत तो वे कोष्ठक इतने ज्यादा जाहिर हो गये ।”

मैं क्या जवाब देता ? कुछ हकलाकर अपराधी की तरह उस प्रत्यकारी दृष्टि को देखकर मन-ही-मन दुआ माँगने लगा ।

खानम ने गुस्से में भरकर प्लेट उठाकर फेंक दिया । प्लेट भूज से फर्श पर गिरकर खील खील हो गया ।

प्लेट फेंककर खानम ने फोटोग्राफर से कहा—“आप न तो ‘पोज़’ लेना जानते हैं, न यह कि किसी खास जगह का कैसे फोकस लें । आप को यह भी पता नहीं कि रोशनी का रुख किधर है और फिर प्लेट धोने में तो आप कमाल करते हैं । बिल्कुल सियाह भेट तसवीर खींचकर रख दो । बस कैमरा कीमती हो, यह न मालूम क्या सोच रखा है सबने ?”

फोटोग्राफर इसका क्या जवाब देता ? उसने मेरी तरफ देखा । मैंने उसे आँख मार दी कि चुप रहे । दूकानदार आदमी । समझ गया और बोला—“आप खफा क्यों होती हैं, मैं दूसरी तैयार करता हूँ... अभी ?”

“आप से नहीं खिंचेगी ?” खानम ने कहा ।

“अभी लीजिये । अभी-अभी । ज़रा देखिये मेरी कारीगरी ।”—खानम की कमजोरी को उसने मेरे आँख झपकाते ही ताड़ लिया था ।

फिर मुझे सौ सिंगार करने पड़े । बन-ठनकर फिर मैं मूर्ति की तरह कुर्सी पर जा बैठा । फिर वही मंजिलें तै की गईं । अब की बार मैंने गाल एक दम नहीं फुलाये, क्योंकि फोटोग्राफर ने दूसरी ही तरकीब निकाली थी । वह यह कि छोटे-छोटे दो पान खिलाकर उसने कहा कि इन्हें चबाकर दो बराबर के हिस्सों में इधर-उधर बाँट लो । ज्यों-त्यों करके तसवीर ली गयी । शाम ही को फोटोग्राफर ने प्लेट पेश की । खानम ने फौरन नापसन्द कर दी । मगर इसके पहले की वह नापसन्दी का कारण बताये, फोटोग्राफर ने यह कहकर उसकी ज़बान बन्द कर दी—“आप अभी कुछ न कहें । अगर तसवीर न पसन्द हो, तो जो चोर की सजा, सो मेरी !”

प्रूफ लिया गया, बेहद खराब आया—यानी दूसरे शब्दों में बिलकुल असल जैसा था । कैमरे के ताक़तवर लेंस ने गालों की मिट्टी पलीद कर दी थी । बीच में पान दबा होने से वे उठ आये थे; लेकिन उनके इर्द-गिर्द आगरे के किले-जैसी खाई थी । मुँह के दोनों ओर कोष्ठक अपनी जगह बदस्तूर थे; लेकिन उतने ज्यादा जाहिर नहीं थे, जितने हवा से गाल फुलानेवाली तसवीर में । फिर चेहरे की दूसरी जगहों की तमाम भुर्रियाँ जो एक चमरखे चेहरे की अपनी खास निशानियाँ हैं, इस सफ़ाई से अपनी-अपनी जगह मौजूद थीं कि जी यही चाहता था कि सब को एक दम से मिटाकर धर दें । फिर प्रूफ के अधूरेपन से सारे चेहरे पर धूप छाँह-सी छिटकी हुई थी । अपनी आँखों पर खुद पसन्दगी की ऐनक चढ़ी रहने से चेहरे की ये स्वाभाविक विशेषताएँ मुझे आइने में नज़र न आती थीं; लेकिन एक ताक़तवर लेंस और उम्दा कैमरे ने सारा कच्चा चिट्ठा खोल कर धर दिया था । फोटो-

यह किसकी तंसवीर है]

୮୧୧୭

ग्राफर इस बढ़िया तसवीर को “अधूरी” है, सिर्फ ‘खाका है’ कहकर वापस ले गया—‘रिटच’ करने के लिए। वरना हकीकत तो यह है कि तसवीर न सिर्फ मेरी सबसे सच्ची तसवीर थी, बल्कि हबहब असल के मुताबिक थी।

“अरे बुलाना तो जरूरी।”—खानम ने बौखलाकर फोटोग्राफर को बुलवाया। वह आया तो खानम ने उँगली के इशारे से प्रफ को देखकर बताया—“यह न आना चाहिये।”—यानी दोनों कोष्टक।

फोटोग्राफर ने इत्मीनान दिलाते हुए कहा—“खातिर जमा रखिये, इनका कहीं पता भी न चलेगा।”

पाँच दिन की बात है। मैं कालेज से वापस आया; देखा कि सारा कमरा आईने की तरह चमक रहा है। खानम खड़ी हुई दोनों हाथों की मुट्ठियों को दूरबीन बनाये हुए दीवार की तरफ देख रही थी। मेरे पैरों की आहट सुनकर उसने मेरी तरफ देखा। मेरा एक कदम बरामदे में था और दूसरा कमरे में। हम दोनों ने एक दूसरे को देखा, फिर मैंने दीवार की तरफ देखा। सामने दीवार पर मेरी तस्वीर शोभायमान थी। वल्लाह! क्या तस्वीर थी कि मैं देखते का देखता रह गया।

“इस बार तो फोटोग्राफर ने कमाल कर दिया।”—
मैंने कहा।

“क्या लाजवाब तसवीर खींची है ?”—तसवीर की मालकिन यानी खानम ने कहा। “यह किसकी तसवीर है ?” कमरे में दाखिल होते हुए भाभी जी ने पूछा; फिर जरा जोर देकर—“यह किसकी तसवीर है ?”

खानम ने भाभी जी की तरफ देखा । भाभी जी ने खानम और तसवीर और मेरी तरफ देखकर खानम से फिर सवाल

किया—“कहाँ से आई... यह किसकी तसवीर है ?” खानम के आन्तरिक विचारों का मुझे पता नहीं, सिवा इसके कि उसके खूबसूरत खिले हुए चेहरे पर गुस्से का गुबार-सा छा गया। हाँ, मुझसे पूछिये कि मेरा क्या हाल हुआ। हालाँ कि तसवीर किसी तरह मेरा फोटो कहलाने की हकदार न थी और न मैंने उसे बनवाया ही था, फिर भी उसका पैदाइश का जिम्मेदार होने की वजह से मैं कुछ अजीब शरमिन्दगी में था।

भाभी जी ने मेरी खामोशी के कुछ और मानी लिये और गौर से तसवीर और मेरे चेहरे का मुकाबला करके मुसकरा कर सिर हिलाते हुए कहा—“आप की है ?... सच बताइये... आप की है न ?”

“उपफोह ?”—खानम ने जलकर कहा—“उपफोह, कैसी बनती हैं, आप जैसे... इतने में दरवाजे के चौखट पर खट से आवाज हुई और भाई साहब ने अपनी भारी आवाज में कहा—“क्या है ?... हैं ?... यह किसकी तसवीर है ?”

“खूब ? यह आपकी तसवीर है ?”—भाई जी ने कहा।

“यह किस गधे ने तसवीर खींची है ?”—भाई साहब ने कहा—“लाहौल बिलाकूबत ?” खानम का दिल बैंगन का भर्ता हो रहा था। क्या मैं जवाब देता, क्या वह ? भाभी जी के चेहरे पर बेइन्तहा शरारत भरी मुसकराहट नाच रही थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी ऐनक साफ की और दाहने हाथ में ऐनक पकड़ कर पहले मुझे निहायत गौर से देखा, फिर ऐनक लगाकर तसवीर को घूरना शुरू किया। उनका चेहरा और भी मुसकराहट और मुसकराहट-भरी शरारत ज्यादा से और भी ज्यादा जाहिर होती गयी। खानम उनके चेहरे की तरफ टक-टकी बाँधे देख रही थी। जिस अनुपात में भाभी जी खिलती

जा रही थीं उसी अनुपात में खानम के चेहरे पर गुस्सा और भुँफलाहट बढ़ती जाती थी। यहाँ तक कि आखिरकार आँखों ही आँखों में जंग का ऐलान हो गया।

X

X

X

भाभी जी कमरे से कहकहा लगाती हुई गईं। जब जरा गुस्सा कम हुआ, तो खानम ने उस षडयन्त्र की आशङ्का का कुछ आभास दिया, जिसकी शुरूआत भाभी जी ने की थी। दरअसल भाभी जी और भाई साहब दोनों लड़ने की नियत से सलाह करके आये थे।

अभी यह बातें हो रही थीं कि गुलाबो बुआ हाथ में तश्तरी लिये हुए आ पहुँची।

“यह तसवीर किसकी है?”—उन्होंने गौर से देखकर रकाबी से तसवीर की तरफ इशारा करके मुसकराते हुए पूछा—“किसी फिरङ्गिनी की है? मेम की?” खानम इस जोर से फट पड़ी कि खुदा की पनाह!—ऐसी बातें वहीं (भाभी जी से) जाकर किया करो। खबरदार, जो मुझसे ऐसी बातें की?”

गुलाबो, बुआ बड़बड़ाती हुई कमरे से निकल गईं।

इतने में खरबूजे वाली आई। रोज खरबूजे बेचने आती थी। मेरी समझ में भाभी जी के कमरे में होकर आई थी जभी तो उनको उन्होंने सिखलाकर भेजा था। उसने आते ही खरबूजों की बात-चीत करने के बजाय फौरन खानम की तरफ देखकर पूछा—“यह तसवीर किसकी है?”

“निकल यहाँ से,” खानम ने आग बबूला होकर कहा—“निकल यहाँ से चुड़ैल, निकल। नहीं...निकल-निकल...”

X

X

X

“बहूजी ने मशीन की एक सुई माँगी है !”

मुड़कर खानम ने देखा । पड़ोस के बँगले में खानम की मुँह-बोली बहन रहती थी । उन्होंने अपने लड़के-नौकर को एक सुई लेने को भेजा था ।

“अच्छा देती हूँ ?”—खानम ने कहा ।

“यह तसवीर किसकी है ?”—माना उसने जवाब में कहा ।

खानम ने इस जोर से एक चाँटा उसके गाल पर दिया कि जब तक खानम लकड़ी तलाश करे-करे, तबतक वह रोता हुआ भागा । “अबे, सुई तो लेंता जा ?” मैंने पुकार कर कहा, मगर वह तो चौकड़ी भर रहा था, अभी खानम बड़बड़ा ही रही थी कि भाभी जी के यहाँ से आयाजी आईं । वे भेजी गई थीं खानम की तबीयत की हाल पूछने; लेकिन देखिये तो मक्कार की बातें; पूछती हैं—“यह तसवीर किसकी है ?”

खानम ने एक डाट बतायी और डपट कर निकाल दिया ।

“मैं तो तबीयत का हाल पूछने आई थी...”

“चूल्हे में जाय तबीयत...निकलो यहाँ से ।”

आया जी को निकाल कर अब खानम की अजीब हालत थी ।”

आया जी गई ही थीं कि माली का लड़का इनाम माँगने आया । उसकी भी खबर ली गयी । इतने में धोबिन आयी, उसकी भी वही दशा हुई, जो खरबूजे वाली की हुई थी । उसके बाद अम्मा आई, फिर नानी आई, और उन्होंने भी आँखें मिचका कर पूछा—“यह किसकी तसवीर है ?” दिन भर इसी हड़बोंग में कटा, शाम को जो मैं वापस आया, तो क्या देखता हूँ कि एक मोटी-सी लकड़ी रखी है । सत्र का प्याला भर चुका है—“अगर अब किसी ने पूछा कि यह तसवीर किसकी है, तो उसकी खैर नहीं ।” खानम ने लकड़ी दिखाकर कहा ।

इत्तिफाक तो देखिये कि भाभी जी का कुत्ता टामी कमरे में आया, और लगा दुम हिलाकर देखने तसवीर की तरफ । उसने दुम हिलानी बन्द कर दी । गौर से तसवीर की तरफ देखकर अचल हो गया—जैसे सन्नाटे से आ गया हो । देखते-देखते उसने तसवीर से आँखें हटाकर खानम की तरफ प्रश्न-वाचक दृष्टि डाली ही थी कि बड़ी लकड़ी इस जोर से उसकी पीठ पर पड़ी कि दोहरा हो गया और चिल्लाता हुआ बेतहाशा भागा—खानम उसके पीछे-पीछे... दरवाजे के आगे भूलेदार कुर्सी में कुत्ता उलझा... इधर से खानम... और उधर से अपने प्यारे टामी की चिल्लाहट-भरी फारियाद सुनकर भाभी जी लपकीं । कुत्ता तो कूदकर निकल गया, मगर जिठानी-देवरानी में ऐसी टक्कर हुई कि दोनों गिरीं ।

भाभी जी को ऐनक टूट गई जो उन्होंने अभी-अभी मुझसे मोल-मँगवाई थी और जिसके दाम भी अभी तक नहीं दिये थे ।

“यह लीजिए अपनी ऐनक ?”—भाभी जी ने टूटी ऐनक मेरे हाथ में धर दी, गोया अब उसके दाम न देंगी, और फिर उसके बाद...

×

×

×

आज तक खानम और भाभी जी में बातचीत नहीं हुई और हो कैसे ? क्योंकि खानम ने कसम खा रखी है कि मैं इस तसवीर को न हटाऊँगी और भाभी जी ने कसम खा रखी है कि मैं लोगों को सिखाने-पढ़ाने से वाज न आऊँगी । चुनाचे जो आता है, यही पूछता है—“यह तसवीर किसकी है ?” और भाभी जी को देखिये कि भूठी कसमें खाती हैं कि मैंने किसी को नहीं सिखाया !

खो गया

स्टेशन पर खानम ने टिकट सम्हालते हुए कहा—“देखो, सफर लम्बा है और इन्टर क्लास की गड़बड़ी। कहीं खो न जाना फिर।”

मैंने ध्यान-पूर्वक इस अहमक बीबी को देखा। मर्दानी सूरत की तो क्या यह है नहीं ! अरे ओ हब्बा की बीबी। जरा गौर करो कि इस नकाब को चेहरे से हटाकर सर पर डालते ही तेरे होश जाते रहे, मानो पल्लू जम गये ! मैंने कुछ बिगड़कर कहा—“तो हम कोई अच्छा तो हैं नहीं।”

“माफ कीजिये” खानम में धीमी आवाज में कहा—“जैसे आप कभी पहले तो खो नहीं गये हैं।”

मैं क्या बताऊँ मुझे कितना क्रोध हुआ। जरा कोई इस इन्तजामकार बीबी से यह पूछे कि ऐ भलेमानस, पहले तू यह बता कि तेरा मियाँ तुझे पहुँचाने जा रहा है या तू उसे पहुँचाने जा रही है ? वह तेरा जिम्मेदार है या तू उसकी देख-भाल करनेवाली और जिम्मेदार है ? मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि एकबार सफर में मुझसे लोटा खो गया। दो बार रुपये चोरी हो गये, एकबार कोई आदमी सोते में जूता लेकर चम्पत हो गया और एकबार कोई अल्लाह कहकर बिछा-वन ही लेकर लम्बा हुआ। एकबार टिकट खो गये और एक स्टेशन पर मैं स्वयं रह गया। मैं इसे भी मान लेता हूँ कि ये सब चीजें न तो चोरी गयीं, न रह गयीं, बल्कि खो गयीं, परन्तु आप स्वयं इन्साफ करें कि इसे मैं कैसे मान लूँ कि मैं भी रह नहीं गया था, बल्कि खो गया था। लाहौल विलाकूवत

कोई बैल बधिया हो गया या ऊँट खच्चर हो गया जो मैं खो गया । इस दुनिया में कितने शौहर और अच्छे-अच्छे ग्रेजुएट सफर की गड़बड़ी और चक्कर में स्टेशनों पर रह जाते हैं तो क्या उनकी बीवियाँ यही कहती फिरती हाँगा कि भियाँ साहब खो गये ! मुझे क्रोध आया इस खुदा की बन्दी पर कि देखो तो उसकी समझ में रह जाने और खो जाने में कोई फर्क ही नहीं है । इसलिए मैंने चिल्लाकर कहा—“व्यर्थ की बातें न करो ।”

×

×

×

दो कुली थे । खानम में कहा था कि जल्दी से बैठेंगे ताकि कहीं जगह न घिर जाय । मैं उसकी राय से सहमत था और दुर्भाग्यवश रेल में जल्दी बैठने-बिठाने का जिम्मेदार अपने को ही समझे हुए था । इसलिए, जैसे ही गाड़ी आयी, कुलियों को जल्दी करने की ताकीद करके मैं जनाना इन्टर क्लास की तरफ चला । अब इस इन्तजामकार बीबी की शेखी देखिये । मैं यह समझता था कि सारा इन्तजाम मुझे करना है और वह समझती थी कि यह नालायक है और मैं जिम्मेदार । नतीजा यह हुआ कि एक कुली को लेकर मैं पहुँचा जनाना दर्जे के पास और दूसरे कुली को लेकर वह पहुँची मर्दाना दर्जा में । हम तेजी से सामान जो रखवाते हैं तो क्या देखते हैं कि दूसरा कुली और बीबी गायब । इसका कुछ खयाल भी नहीं था कि ऐसा हो गया । कुछ प्रतीक्षा की । फिर वहीं वापस गया जहाँ खड़ा था । मगर जाने दीजिये । अगर घरवाली कहीं खो गयी तो मुझे विश्वास है कि किसी अक्लमन्द की किस्मत ने जो अगर ‘धक्का खाया’ और वह उसे ले गया तो न सिर्फ उसे लेकर पड़तायेगा, बल्कि खुशामद करके वापस ही कर जायगा ।

अब आगे ऐसा हुआ कि मैं प्लेटफार्म पर बौखलाये फिर रहा था कि दूसरे कुली ने मुझे पहचान लिया और बताया कि मर्दाना इन्टर क्लास में सामान रख दिया गया है। शेष सामान भी लेकर वहीं चलिये। इसलिए मैं पहुँचा। मालूम हुआ यहीं बैठना है। खैर, कोई बात नहीं। अक्सर ऐसा करते हैं। कोई तकलीफ नहीं होता, सिर्फ किसी कानी-कुतरी या खूबसूरत औरत की तरफ आँख उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती है और दो तीक्ष्ण और संदेह करनेवाली आँखें दो कमजोर और बेचारी आँखों पर पहरा लगाये रहती हैं। अगर किसी नकटो-चिपटो औरत के पैर के गहनों की आवाज़ छम से आयी नहीं कि उधर खानम की आँखें बिना उस औरत को देखे हुए मेरी आँखों पर कि कहीं उसे देखता तो नहीं हूँ।

सारांश यह कि शेष सामान भी यहीं आ गया। जगह काफी थी और हम ठिकाने से जमकर बैठ गये और फिर बहुत जल्द मुझे यह भी मालूम हो गया कि ऐसा क्यों किया गया। केवल इसलिए कि न तो मैं कहीं स्वयं खा सकूँ और न लोटा-बोटा फेंक सकूँ। और फिर “तुम्हें बार-बार पैसे-वैसे के लिए दौड़कर आना पड़ता।”

x

x

x

मैंने कहा कि हिन्दुस्तान टाइम्स, खरीदेंगे ताकि ताजा समाचार पढ़ें। उत्तर में हमें सचित्र साप्ताहिक ‘टाइम्स’ अखबार दिखाया गया जो पाँच छः दिन पहले का था और कुली से पहले ही मँगवा लिया था। अब हुकम यह मिला कि देखिये, इसमें समाचार। जब मैंने कहा कि यह तो पुराना है तो जवाब मिला—“सब ठीक है।” और फिर जब मैंने ताजा समाचार के लिए कहा तो जवाब मिला—“जल्दी क्या है? समाचार

आगे चलकर किसी से पूछ लेना और नहीं तो कोई दूसरा खरीदेगा उससे माँगकर पढ़ लेना ।” चलिये छुट्टी हुई । खैर, संतोष किया ।

(२)

गाड़ी चली और बहुत जल्द निकट के बैठने वालों से मैंने बातें करना प्रारम्भ कर दिया । एक खाकी पोशाक पहने हुए व्यक्ति ने मुझे बड़े गौर से इस तरह सर से पैर तक देखा कि मुझे संदेह हुआ कि अब यह कहता है कि मैंने आपको कहीं देखा है; लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि यह बात नहीं है, बल्कि कारण दूसरा ही है । वह यह कि मैं विलकुल रद्दी सूट पहने हूँ जैसे कि मालूम हो कि मैं किसी गोरे के यहाँ था और वहाँ उसके दादा का सामान नीलाम हो रहा था उसमें से ले आया ।

इन महाशय ने मुझे कुछ संदेह की दृष्टि से देखा और खानम की तरफ भौहों से इशारा करके कहा—“ये कौन हैं ?”

हैं—“कौन ? ये……”

वह—“आप इनके साथ हैं ?”

मैं—“जी हाँ मैं……”

वह—(बात काटकर) “नौकर हैं आप ?”

मैं—“जी ? आपने क्या फरमाया ?” (हालाँकि मैंने सुन लिया) ।

वह “मेरा यह मतलब है कि आप……” (चुप)

मैं—“मेरी हैं ये” (घमण्ड के साथ) ।

वह—“बीबी !” (इस तरह मानो मैं भूठ बोलता हूँ, मक्क मारता हूँ ।)

मैं—“जी हाँ”

यह कहकर मैंने उस संदेह करने वाले आदमीनुमा पशु को देखा । वह होठों के भीतर मुस्करा रहा था और आँखों से शरारत टपकती थी मानो वह विश्वास नहीं कर सकता और न करेगा । कैसा मुझे क्रोध आया है उस घमण्डी पर की बयान से बाहर । बातचीत समाप्त होने के बाद अर्थात् विश्वास करने से अस्वीकार करने के बाद, वह सिगरेट का धुँआ दूसरी तरफ एक हुँकारे के साथ वहीं छोड़ने लगा, बल्कि जोर देकर मानो मुझसे कह गया कि भूट बकता है ।

मैं भला कब इसे सहन कर सकता था । मैंने उनका हाथ पकड़कर अपनी तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—
“जनाब को इस बारे में आखिर संदेह क्यों हुआ ?”

यह मैंने बहुत धीरे-से कहा कि खानम न सुन ले, नहीं तो तुरत पूछ बैठेगी कि ऐसी बातें शुरू ही क्यों की, मगर इस नालायक और सनकी आदमी को तो देखिये कि आवेश में ‘भक’ से धुँआँ मुँह से निकालकर कहता है, और वह भी मुस्कराकर बिल्कुल धीमे स्वर में मानों गुह्य बातें कर रहा हो—
“जी, मगर धीरे से बोलिये ।”

यह कहकर उसका लापरवाही से दूसरी तरफ मुँह करके धुँआ उड़ाने लगना ! मैं जलकर कबाब हो गया । मैंने मन ही मन कहा कि ऐ अभागो, तू मत विश्वास कर । शक्की आदमी जा चूल्हे में । बीबी तो यह हमारी सोलह आना है, हम में किसी का साभा नहीं । तू भाड़ में पड़ । हमारी बला से जहन्नुम में जा । मत विश्वास कर ।

इसके बाद मैंने अपने आपको गौर से देखा । सुना करता था कि प्राचीन काल में लोग कंपड़े घड़ों में रखते थे, जब सर्व साधारण के लिए संदूकें न थीं । आज पता चला कि यह

तरीका बिल्कुल गलत है। बात वास्तव में यों होंगी कि ऐसे लोगों की स्त्रियाँ मैले कपड़े निकालकर अपने मर्दों को जबर-दस्ती पहना देती होंगी। इसलिए मुझे खानम पर बेहद क्रोध आया। सरक कर थोड़ा निकट आया। वह समझी कि मैं कुछ आवश्यक बात कहना चाहता हूँ, इसलिए उमने भी कान आगे बढ़ाया और मैंने चुपके से उसके कान में कहा—“क्यों जी, यह तुमने आखिर हमें समझा क्या है?”

इसके जवाब में उसने मुझे भी हैं मिकोड़कर इस तरह देखा कि मुझे यह संदेह हुआ कि मुँह से कहने के बदले मन ही मन कह रही है—“अहमक।”

मुझे इस तरह शरारत भरी नजरों से उसके देखने पर और भी गुस्सा आया और फिर मैंने उम्मी तरह कहा—“आखिर तुमने हमें समझ क्या रखा है?”

“हूँ!” उसने अन्त में कहा—“खैर तो है?”

मैंने भिन्नाकर—“ये हमारे अच्छे-अच्छे सूट—महँगे वाले—बल्लिक सेकण्ड क्लास में सफर करने वाले सूट और अच्छा-अच्छा टाईयां बगैरह आखिर किस दिन के लिए तुमने बनवाकर रखी है? आखिर तुम पहनने क्यों नहीं देती? चलते समय मैंने तुमसे कितना-कितना कहा और कैसे-कैसे कहा कि यह सूट मैला और दस बार का पहना हुआ है, जिससे दो-चार बार जूता भी पोंछा जा चुका होगा। पहनने को यह क्यों दिया? क्यों नहीं तुमने……?”

बात काटकर वह भी धीरे-से, परन्तु तेजी से बोली—“पागलों की तरह बातें मत करो। जानते हो, सफर में कपड़े खराब हो जाते हैं।”

अब आप ही न्याय कीजिये कि ऐसे उटपटांग जवाब से

मैं कैसे कबाब न हो जाता। स्वयं तो पहने हुए हैं रेशम के कपड़े, रेशम के मोझे, ग्यारह रुपयेवाला जूता और मैं पहने हुए हूँ एक मैला-कुचैला सूट; टाई ऐसी जैसी भंगिर्न का कमर-बंद, और कालर ऐसा जैसे टामो का पट्टा और पैर में हमारे एक अँगरेजी जूता ? यों कहिये कि एक नकटा मुंडा ! इनके कपड़े तो मैले न होंगे और हमारे हो जायँगे ! ऐ. खुदा, इन बदसूरत मर्दों को खूबसूरत औरतों ने सोच क्या रखा है ! मैं जल ही तो गया और मैंने बल खाकर कहा—“और तुम जो अपने अच्छे कपड़े पहने हो ? ये मैले न होंगे ?”

“रेल में ये बातें नहीं”.....यह कहकर मानो एक घसीट का पेंच था कि खींचकर वह काटा और जवाब आँखों से क्रोध के रूप में समाप्त !

मैंने भिन्नाकर इस चटाखेदार जवाब पर मानों क्रोध का घूँट पी गया, मगर अन्त में सन्तोष न हुआ और फिर मैंने जोश में आकर कहा—“आखिर यह भी कोई...”

मगर मेरी बात यह कहकर तेजी से काट दी गयी—“और जो सफर में कोई मिलने-जुलनेवाली मिल जाय तो ?.....बस। बच्चा बनते हैं !” यह कहकर दूसरी तरफ मुँह मोड़ लिया मानो आगे बहस करना स्वीकार नहीं था।

मैं सिचाय इसके क्या करता कि जलता और भुनता रहा।

इतने में गाड़ी रुकी। एक सब इंस्पेक्टर साहब अपनी फौज और सामान के साथ इस तरह गिरते-पड़ते डब्बे में दाखिल हुए कि खुदा की पनाह। घबड़ाकर खानम ने कहा—“हमें सेकंड क्लास का टिकट बनवा दो...जल्दी...जल्दी।”

मैंने कहना चाहा—“मगर।”

“...जल्दी...वह लो...जल्दी, जल्दी।” यह कहकर मुझे टिकट दिये और फिर—“जल्दी करो।”

मैंने सोचा अच्छा है सेकंड क्लास में चलकर इससे खूब लड़ूँगा और तुरत दूसरा सूट निकलवाकर पहनूँगा। इसलिए मैं टिकट बनवाने दौड़ा।

(४)

इन रेलवे के बाबुओं को इतनी जम्हाइयाँ आती हैं और फिर ऐसी-ऐसी कि छोटी-छोटी आँखें मोटे-मोटे चेहरों पर से खो-खो जाती हैं, दिल का खून सिमटकर नाक की नोक पर आ जाता है और फिर उसके साथ अँगड़ाइयाँ अलग! ऐसी बेतुकी और बेमौका कि बयान से बाहर। यह नहीं देखते कि हमारा वजन क्या है और जिस कुर्सी पर हम स्वयं धरे हुए हैं वह कैसी है। उन्हें तो इससे बहस ही नहीं। बस अँगड़ाई लेने से काम। मैंने तो कहा कि महाशय, मुझे कानपुर तक के सेकंड क्लास के टिकट बनवाने हैं। उधर इसके जवाब में पहले तो उन्होंने मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखा और शायद किसी दूटे-फूटे अँगरेज का खानसामा समझकर जवाब में अँगड़ाई लेना उचित समझा। कुर्सी जी चरचरायी तो एक दम से ऐसा मालूम हुआ कि जैसे जादू के जोर से चेहरे पर आँखें पैदा हो गयीं। यह इटावा का स्टेशन था और मैं पुल पार करके प्लेटफार्म के उस तरफ गया था टिकट बनवाने। बाबू जी ने बड़ी मेहरबानी की जो इतनी आरजू भिन्नत के बाद एक लापता टिकट चेकर का नाम बता दिया। मैं उनकी तलाश में लग गया और हर जगह तलाशा। कोई जगह न छोड़ी, सिवाय स्टेशन के पाखाना के। कहने का तात्पर्य यह कि इसी तलाश में था कि वह स्वयं मुझे तलाश करते आ

पहुँचे। मैंने टिकट दिये और बदलने को कहा तो उन्होंने कहा “दाम” और मैंने जवाब में कहा—“अरे !” रुपये-पैसे का बटुआ खानम के पास। अतः टिकट-विकट छोड़कर दौड़ा एक दम से दाम लेने। दौड़ा ही था खयाल आया कि कहीं टिकट-चेकर टिकट लेकर गायब न हो जाय, इसलिए वापस दौड़ा और उधर रेल ने सीटी दी। जब तक मैं झपटकर उनके हाथ से टिकट वापस लूँ, रेल चल दी। अब पुल पार करके उस तरफ पहुँचने के बदले में रेल की पटरी फाँदकर दौड़ा बुरी तरह और जो डब्बा सामने आया उसी में बैठ गया। अब हाँपते-काँपते खिड़की से सर निकालकर बाहर जो देखता हूँ तो रेल तो प्लेटफार्म से बाहर और खानम खड़ी हुई हैं सामान के साथ ! बौखलाया हुआ तो आया ही था, बस देखते ही उछल पड़ा। सोचा कि खिड़की खोलकर कूद जाऊँ, मगर एक बड़े मियाँ बैठे थे, मोटे से। उन्होंने शायद सोचा कि यह पगला है, इसलिए हाथ पकड़ लिया। जल्दी में झटके पर झटके देता था, मगर हाथ नहीं छूटता था। वे न ‘मालूम’ क्या पूछते थे और मैं क्या कहता था। खिड़की उन्होंने बन्द करते हुए मुझे छोड़ा तो मैं जंजीर खींचने दौड़ा। दो-तीन झटके दिये, मगर भला वह क्यों खिंचे। दूसरों से कहता था तो कारण पूछते थे। यह सारा कांड क्षणमात्र में ही हो गया। कारण बताया तो फिर बड़े मियाँ ने हाथ पकड़कर बिठा लिया और कहा—“आखिर इस कदर घबराहट क्यों है ? अगले स्टेशन से तार दे देना और दूसरी गाड़ी से वापस आ जाना।” मेरी समझ में बात आ गयी। झँककर फिर खानम को देखने की कोशिश की। खयाल आया कि ठीक है। ऐसा हो चुका है। उस बार जब रह गया था तो खानम

चली गयी थी। बाद में उसने कहा था कि मैंने गलती की। अगले स्टेशन पर उतर कर तुम्हें तार दे देती और तुम आ जाते। मैंने कहा, ठीक है। मैं स्वयं पहुँच कर आगे तार दे दूँगा और वह आ जायगी।

(५)

इक्स्प्रेस के रुकने का दूसरा स्टेशन जसवंतनगर था। वहाँ उतरा तो पहले ही से तार मौजूद था। लिखा था कि इस नाम के आदमी को रेल के डब्बे से यह कहकर उतार लो कि तुम्हारी बीबी इटावा स्टेशन पर उतर गयी हैं। मैं उतर ही चुका था। मेरे पास तार के पैसे भला कहाँ! मगर मालूम हुआ कि तार मुफ्त दिया जायगा, इसलिए तार दिलवा दिया कि “उतर पड़ा हूँ। घबराना मत। दूसरी गाड़ी से चली आओ।”

मेरे यहाँ पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद एक माल गाड़ी इटावा जा रही थी। मैंने दिल में सोचा कि विरह और वियाग की तकलीफ कौन उठाये। अच्छा है इससे चला चलूँ। मालूम हुआ कि सेकंड क्लास का टिकट लेना पड़ेगा। जब मैंने कहा कि रुपये नहीं हैं तो यह भी तै हो गया कि अच्छा तुमको मुफ्त पहुँचा दिया जायगा। मैंने कहा, अच्छा है और खुश था कि गार्ड साहब ने बड़े इतमीनान से प्रोग्राम बनाया। यानी यह कि इतना तो विश्वास था कि कभी न कभी यह गाड़ी जरूर ही जायगी; मगर यह पता न था कि वहाँ पहुँचेगी कब? सवारी गाड़ी जो इसके बाद जायगी उससे पहले या बाद में? पूछ-ताछ करने से मालूम हुआ कि सवारी गाड़ी बीच के किसी स्टेशन पर नहीं रुकेगी और यह अवश्य रुकेगी। पहुँचने के विषय में यह आशा थी कि यह सवारी गाड़ी से

कुछ पहले पहुँचेगी; लेकिन अगर ऐसा न हुआ तो फिर शायद सवारी गाड़ी के भी आध घण्टे बाद पहुँचे और तब तक तो यही पता नहीं था कि यह धोखेबाज छूटेगी कब । मैंने कहा— जहन्नुम में जाय ऐसी गाड़ी और विचार बदल दिया और सवारी गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा ।

प्रतीक्षा भी बुरी वस्तु है और फिर ऐसे अवसर पर । तंग आकर मैंने भी बड़े आराम से एक कुर्सी पर बैठकर आँखें आधी बंद किये हुए, पैर हिलाना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि थक गया । फिर आँखें खोलकर बड़ी देर तक सीटी बजाता रहा उसके बाद फिर पैर हिलाये, खामख्वाह घड़ी बार-बार देखी । संदेह हुआ कि सूइयाँ चल नहीं रही हैं । कान से कई बार लगकर देखा । बार-बार अपनी घड़ी में वक्त देखा और फिर स्टेशन की घड़ी देखने गया । कुछ बश न चला तो खयाल आया कि लाओ न सही कुछ पानी ही पीवें । पानी पीने जा रहे थे कि खयाल आया कि पेड़ा खाकर पानी पीना ठीक रहेगा । पहुँचा पेड़े वाले के पास । कहा-दो आने के पेड़े देना । वह तौलने को हुआ तो खयाल आया कि कैसे ? शीघ्र ही उससे पेड़ों का भाव पूछकर महँगे होने के कारण उससे छुटकारा पाया और वहाँ से सीधे प्लेटफार्म की कगार पर चहलकदमी करनी शुरू की । बहुत शीघ्र तय कर लिया कि इस तरह चहलकदमी करनी चाहिए कि कदम नपा-तुला पत्थर के टुकड़े के अंदर ही पड़े । इसलिये इस प्रकार प्लेटफार्म के किनारे किनारे टहलकर उसके पत्थर दो बार गिन लिये । उसके बाद सिगनलों को जाकर दबाना शुरू किया । एक कुली ने स्टेशन मास्टर की तरह शान दिखलाते हुये रोका और बताया कि यह बात तो

मरत मना है। संक्षेप में मैं क्या कहूँ कि किस प्रकार मैंने समय व्यतीत किया।

(६)

हमारी तरफ से खानम की तरफ गाड़ी पहले जाती थी और मैं उसी की प्रतीक्षा में था। गाड़ी आयी और मैं बिना टिकट लिये ही बैठकर रवाना हुआ क्योंकि हमारे पास टिकट मौजूद ही थे। रवाना हुआ तो आखिर पहुँचूँ क्यों नहीं ? पहुँचे और यह सोचकर कि मेरी बीबी वेटिंग रूम में बैठी होगी, मैं उसमें धड़धड़ाते हुए घुस गया। वहाँ खानम के बदले एक मोटा सा अँगरेज बेहरा था। उसने सोचा होगा कि यह बटलर किधर से घुस आया। वह बोला—“ब...ह्वाट्स ?” मैं वहाँ से उलटे पाँव लौटा। मुझे भला कहाँ फुरसत थी कि अँगरेज से उलझूँ या उसे जवाब दूँ। इधर देखा, उधर देखा तरह-तरह के संदेह दिल में उठ रहे थे कि बाबू साहब मिले। उनसे मैंने पूछा—“क्यों जनाब ?”

“फरमाइये।”

मैंने कहा—“यहाँ पर एक मुसलमान लेडी...मुसलमान औरत...”

वह बोला—“हाँ हाँ। वही न जिनके मियाँ उन्हें छोड़कर आगे चल दिये। अजीब अहमक है वह भी.....अचानक कुछ संदेह करके...मगर आप ?...वह तो गयीं शायद।”

मैंने क्रोध को रोकते हुए कहा—“कहाँ गयीं ?” फिर भी परेशानी को मैं कैसे छिपाता !

“अगले स्टेशन पर...शायद जसवंतनगर।”

मैंने कुछ व्यग्र होकर पूछा—“कब ? कैसे ? हैं ! कब ?”

“मालगाड़ी पर गयीं...सामान तो उनका जाते मैंने देखा

था.....जरूर गयी होंगी...गयीं...मगर...मगर आप ?”
(उसने मुझे सर से पैर तक देखा ।)

मैंने कहा—“वह मेरी बीवी है ।” यह कहकर मैंने जान बूझकर दूसरी तरफ नजर कर ली ।

“आपकी ?” यह कहकर वह संदेह करके चलते-चलते रुक गया । “आपकी ।” उसने फिर कहा ।

“जी हाँ ” मैंने कहा, “ठीक-ठीक पता लगाकर बताइये !”

“ओ हो माफ़ कीजियेगा ?” उसने कहा, “आइये ।” और यह कह वह आगे चला । हम दोनों बुकिंग आफिस में पहुँचे और वहाँ पूछने पर पता चला कि वह माल गाड़ी से गयीं । और फिर माल गाड़ी भी कौन-सी ? वह जो रास्ते में छोटे स्टेशन पर हमारी गाड़ी को मिली थी !

अब जरा ध्यान दीजिये कि एक तो मैं वैसे ही खूबसूरत, फिर जोरू गड़बड़ में पड़ जाने के कारण और भी बदहवासी । इन अयोग्य बाबुओं को लाख यकीन दिलाता हूँ कि जनाब गलती उस बेवकूफ बीवी की है न कि मेरी; मगर वे कहते हैं—“जनाब, वह तो बड़ी होशियार मालूम पड़ती हैं । गलती आप की है कि आप क्यों चले आये, जब आपका रास्ता उधर ही था ?”

अब मुझे यह बताइये कि मैं इन अहमकों से क्या यह कह देता कि मैं उसके आकर्षण से यहाँ खिंच आया । इतनी बुद्धि ही नहीं, जो समझते । लगे हुज्जतें और बहस करने । मैंने बहुत कुछ कहा कि इस कारण चला आया कि गाड़ी पहले इधर आती है । मगर ये रेलवे वाले ? अजो, बकवास करने वाले और नालायक होते हैं । न मानना था, न माने; कायल न होना था, न हुए । खैर मैंने मन-ही-मन कहा कि इनक दिमाग रेल की सीटों और इंजनों का ‘जक-जक’ और ‘भक-भक’ ने

उड़ा दिये हैं और फिर खानम एक चलती-पुर्जी, उसने भी कुछ लगा-बक्का दिया होगा। अतः ये सभी दया के पात्र हैं। इसलिए, उन लोगों को तो मैंने उनके हाल पर छोड़ा और इनसे कहा कि खैर, सारी गलती मेरी ही सही। अब आपही इतनी अक्लमंदी करें कि उसको अगले स्टेशन पर तार दे दें कि मैं यहाँ हूँ; मगर खबरदार, अब तुम वहीं रहना।

(७)

इसके बाद अब मैंने सोचा कि क्या करना चाहिए। गाड़ी छूटने में काफी देर थी। भूख अलग सता रही थी। सोचा कि जरा शहर में चलकर इस्लामियाँ स्कूल के पुराने साथियों में से किसी को ढूँढ़ूँ। अतः एक साहब के यहाँ पहुँचा जिन्हें मैंने आठवीं श्रेणी में काफी दिन हुए, छोड़ा था और विश्वास था कि अब नवीं श्रेणी में आ गये होंगे। सौभाग्य कि ये मिल गये और खूब मिले। जो बातें होती हैं वही हुईं। उनका यहाँ जिक्र बेकार है।

अब यहाँ एक गलती हमसे हो गयी। वह यह कि मैं गाड़ी का ठीक समय मालूम करना भूल गया। गाड़ी का केवल इस तरह का नाम याद रह गया, जैसे साढ़े दस बजे वाली, पौने पाँच बजे वाली आदि। यह गलती मैंने उस समय महसूस की जब गाड़ी छूटने का वक्त करीब आया और मैंने अपने मिह्रबान दोस्त से चलने को कहा। उन्होंने कायदे के अनुसार ही विश्वास दिलाते हुए यह कहकर रोकने की कोशिश की कि गाड़ी में अभी देर है। अतः कुछ देर रुकने के बाद मैं चला। स्टेशन पहुँचा। जब तक एक्का पर से उतरूँ-उतरूँ गाड़ी प्लेटफार्म छोड़ चुकी थी।

या मेरे अल्लाह ! अब मैं क्या करूँ। दोस्त से पैसे लेकर

खानम तो तार दिया कि दुर्भाग्यवश गाड़ी छूट गयी और मैं दूसरी गाड़ी से अवश्य आता हूँ ।

मैंने तार देने को तो दिया मगर अब यह सोच रहा था कि क्या होगा ! शामत आ जायगी । वह लड़ाई होगी कि बयान से बाहर । मगर अब लाचारी थी । मैंने इन दोस्त को यह दण्ड दिया कि उनसे कहा कि अब हमारे साथ बैठो और बिदा करके जाना ।

x

x

x

गाड़ी आयी और हम बिदा हुए । जसवंतनगर का स्टेशन आया । मैं समझता था कि स्टेशन पर सामान लिए तैयार खड़ी मिलेगी; मगर वहाँ कोई भी नहीं । जल्दी से उतरा और एक कुली की शक्कवाले आदमी से जो पूछा तो उसने जवाब दिया कि—“सो रही होंगी वेटिंग रूम में ।” मुझे क्या मालूम कि इस कमबलत ने व्यंग किया है । सुनते ही मैं वेटिंग रूम की तरफ दौड़ा और जोर से साथ ही कुली को भी आवाज दी । क्या देखता हूँ कि दरवाजा बंद । वह भी अंदर से । गजब हो गया । मैंने मन ही मन कहा—“सो रही हो घोड़े बेंचकर और यहाँ गाड़ी निकली जाती है ।” भाँककर देखता तो अँधेरा । जानता ही था कि बिना बत्ती कम किये उसे नींद ही नहीं आती । अब मैंने व्यग्र होकर किवाड़ खटखटाना शुरू किया मगर वहाँ जवाब नुद्दारद । इतने में रेल ने सीटी दी । मैं और भी घबड़ा गया । समझ में न आया कि क्या करूँ । हताश होकर अपने डब्बे की तरफ लपकने का हुआ कि टोपी तो ले लूँ कि एक कुली ने रोका । रेल ने एक और सीटी दी । कुली से मैंने कहा ठहरो और लपका अपने डब्बे की तरफ टोपी लेने । घबराहट में न मालूम किस डब्बे में घुसा । वहाँ से

निकला और अब इधर दौड़ता हूँ और उधर; मगर जल्दी में अपना डिब्बा नहीं मिलता। रेल ने एक और सीटी दी और अब मुझे खयाल आया कि वह अपना डिब्बा। रेल चली और मैं लपका। मालूम हुआ कि गलती हुई और डिब्बा पीछे है, मगर अब गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली। खड़े का खड़ा रह गया। अपना डिब्बा सामने से गुजरा और मैंने देखा कि वह सामने मेरी टोपी रखी है। मैंने टोपी उठाने की चेष्टा की, मगर 'गाड़ी धड़र-धड़र-धड़र' करके चली गयी।

खैर मैंने दिल में कहा—“टोपी गयी तो क्या हुआ। अच्छा हुआ कि खानदान ने नयी टोपी नहीं दी थी, अब निश्चित होकर आध घण्टा वेटिंग रूम में लड़ाई होगी और फिर मैं सोऊँगा। सुबह की गाड़ी से जाना होगा। इसलिए मैंने वेटिंग रूम के निकट आया, दरवाजों को जोर से पीटा। वही कुली आया और कहने लगा कि “अन्दर से बन्द है और वेटिंग रूम का चपरासी भीतर से ताला बंद कर देता है। आपको खुलवाना हो तो स्टेशन मान्टर साहब से कहिये।”

मैंने आश्चर्य-चकित होकर कहा—“हैं ! तो इसके अन्दर कोई नहीं है ! कोई औरत……।”

“एक बेगम साहबा आयी थीं, मगर वह तो गयीं।

मैंने उछलकर कहा—“किधर ?”

“इधर” कहकर कुली ने रेल की पटरी की तरफ उँगली उठा दी।

मैंने बेहद परेशान होकर एक गहरी साँस ली। जी में आया कि इन रेलवेवालों से खामखवाह लड़ पड़ूँ। अब मुझे पता चला कि प्राचीनकाल की बैलगाड़ियों के सफर में क्या-क्या लाभ थे। लाख कष्ट भेलने पड़ते थे, मगर खुदा की

कसम, इस तरह परेशान कर देनावाला कोई कष्ट न होगा । जरा गौर तो कीजिये कि खामख्वाह मेरी यात्रा छोटी हुई । खानम की यह हरकत बिल्कुल निरर्थक है । उसको कभी भी नहीं जाना चाहिए था । आखिर क्यों चल दी ? कैसे चल दी ? उसे चल देने का अधिकार क्या था ? खैर, देखा जायगा । इसी तरह मैं देर तक बल खाता रहा, मगर बहुत जल्दी इसे स्वीकार करना पड़ा कि रात का वक्त है और जाड़े का मौसम है और दुनिया में हैरानी और परेशानी के अलावा और भी कोई चीज है और उसका नाम शायद नींद है । मगर बहुत जल्द जाड़े ने कहा कि बिना दो आदमी के न तो रात ही कोई चीज है और न नींद ही । और यही मुझे भी मानना पड़ा । लेकिन चूँकि इस समय मुझे जाड़े पर कोई निबंध नहीं लिखना है इसलिए मौसमी कठिनाइयों को अलग छोड़िये । केवल यह सोचिये कि आग तापते हुए कुलियों के निकट बैठकर अगर शरीर को गर्मी पहुँचाना अशुभव था तो यह भी असम्भव था कि बिना ओढ़ना-बिछौना के सो रहूँ या एक और आदमी की एक मैली-सी रजाई छान लूँ । जो मुझे दिग्वा दिग्वाकर ओढ़ रहा था और ललचा रहा था । वस, यों समझिये कि मालूम होता था कि अब सुबह नहीं होगा और यों ही सिकुड़कर मर जायँगे । पैसा पास नहीं । हाँ, टिकट एक छोड़ दो थे ।

ज्यों-त्यों करके सुबह हुई ! गाड़ी भी आयी । बैठ भी गया और निर्धारित स्थान पर यह हुलिया लिये मैला सूट पहने हुए और नंगा सिर पहुँच भी गया कि रात के जागे हुए और सिकुड़े-सिकुड़ाए हैं मगर वहाँ पहुँचे और मालूम जो किया तो बीबी नदारद ।

या मेरे अल्लाह ! अब मैं क्या करूँ ? आखिर यह किधर

गयी ? क्या खो गयी ? एक जगह और तलाश करवाया, मगर वहाँ भी पता नहीं । आखिर ससुराल तार दिया और वहाँ से जवाब आया कि सही-सलामत पहुँच गयी जैसे वहीं जा रही थी । अब भिवाय इसके और क्या चारा था कि यहाँ से रुपये कर्ज लेकर मैं ससुराल पहुँचूँ । इसलिए पहुँचा ।

(६)

शाम को करीब पाँच बजे होंगे जब मैं ससुराल पहुँचा । दाखिल हुआ तो क्या देखता हूँ कि ससुर साहब नमाज पढ़कर दुआ मँग रह हैं और तीन छोटे-छोटे लड़के बाताई पर बैठे हुए थे जो साले-से प्रतीत होते थे । उनमें से एक उझल पड़ा और मैंने भी उसे पहचान लिया । किस तरह इन नालायक ने मानों प्रसन्नता के स्वर में भराई हुई आवाज से चुपके से कहा कि मैं जल-भुनकर कबाब हो गया । उसका मारा चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा और तेजी से चारपाई से यह कहता हुआ उतरा—“भाई मियाँ खो...खो गये...मिल...आ...” यह कहता हुआ वह अंदर दौड़ा । बाकी दोनों उसके पीछे । अंदर पहुँचकर शायद उसने गला फाड़कर चिल्लाया “...तुम तो कहती थी कि भाई मियाँ खो गये...मिल... सुन.ई नहीं दिया ।)

मैंने ससुर जी को सलाम किया । उन्होंने इरारे से रोका और जल्दी से दुआ खत्म करके कहा—“या अल्लुम सलाम । जिदाबाद...अरे मियाँ कहाँ खो गये थे ?” (मुस्कुराते हुए) ।

मैं भला क्या कहता । जी में तो यही आया कि ‘लुगत’ (कोर) कहां मिलती तो यही बनाना कि खो जाना और चीज है और रह जाना और चोज है और इस बार यह तो रह भी नहीं गया था बल्कि आपकी साहबजदी साहबा के कारण

यह सब कुछ हुआ । मैं क्या जवाब देता । संक्षेप में यों समझाया कि सारा दोष खानम पर आवे; मगर वह जो किसी ने कहा है कि अपने और पराये में अंतर है, सच कहा है । लगे, हजरत वही किस्मा बयान करने । अर्थात् उन्होंने उन सारी वस्तुओं की गणना प्रारम्भ की जो यात्रा-काल में मुफ्तसे खो गयी थीं । और फिर बाद में टैप का बंदः—

“तुम्हारे साथ तो लम्बी यात्रा करना खतरा से खाली नहीं ।”

इनसे निवटकर घर में पहुँचा तो खानम की एक परदादी किस्म की बहरी खातून को खुशामदन साहिबा चीख-चीखकर उखड़े-उखड़े जुमलों में मेरे मिलजाने की खुशखबरी सुना रही रही थींः—“आगया...हाँ...आगया...अभी...”

बड़ी बीबी बोली—“मिल गया ?”

“हाँ मिल गया ।...” खुशामदन साहिबा बोलीं, “मिल गया...क्या खड़ा है...सलाम करता है ।”

“जीता रहे, हजारी उग्र हो, उसके दुश्मन खो जायँ । आदि अदि । बड़ी बीबी दुआएँ दे रही थीं कि घर की हडबोंग सुनकर पड़ोसिन ने आवाज दी । बातचीत करने के लिए दीवार में एक छेद कर लिया था । वहाँ एक और बुढ़िया खड़ी पड़ोसिन को कुछ बनाने लगी । पूरी बात मैंने नहीं सुनी मगर हाँ इतना अवश्य सुना :—“उसके दुश्मन...थे थे...मिल हाँ...अभी...”

अब मैं अपने को रोकने में असमर्थ हो रहा था । जी चाहा कि फट पड़ूँ । एक सिरे से सबकी खबर ले डालूँ । अंत में मैंने दबी जबान से कहा—“कौन खो गया था ? कोई बच्चा हूँ जो मैं खो जाता ? खामखाह आप लोग...”

मैं एक दम चुप हो गया । सामने अपने कमरे से खानम

चुप रहने के लिए उँगली से मंकेत कर रही थी। मैं उधर देख ही रहा था कि एक और दादी ने पीछे से अपनी मजेदार आवाज़ में कहा—“मेरी चमेली की कली, कहाँ खो गयी थी ?”

उन्हें देखकर मुझे वैसे ही हँसी आती है। हँसकर मैंने कहा—“दादी, सलाम।”

इसके उत्तर में उन्होंने आशीर्वाद देकर मेरी यह कहते हुए बलाएँ ली :—“क्या बताऊँ बेटे ! जब से मैंने सुना कि खो गया, दिल उलटा आता था। मैंने देवता माने हैं।”

“आप भी कैसी बात करती हैं !” मैंने कुछ बुरा मानते हुए कहा—“कोई बच्चा हूँ जो खो जाता। आखिर कोई बात भी है जो सब कह रहे हैं कि मैं खो गया था।”

“फिर और कैसे खो जाते हैं।” दादी तेज होकर बोलीं, “स्वयं तेरी घरवाली कह रही है कि तू खो गया। जिसका अत्ता-पता न मिले कि किधर गया और कहाँ रह गया तो उसे तो यही कहेंगे कि वह खो गया...और फिर मियाँ, अल्लाह रखे, तुम हो भी तो बिल्कुल भोले अहसक ! दुनिया भर की चीजें खोते फिरते हो। आये दिन सुनने में आता है कि यह खो गया, वह खो गया। फिर कल सुना तुम स्वयं कहीं खो गये।”

मैंने कुछ हँस-हँसकर और कुछ बिगड़-बिगड़कर बनाया कि न तो मैं खो सकता हूँ और न तो खो गया था। और आगे इस शब्द का प्रयोग मेरे ऊपर न किया जाय ! मगर यहाँ की तो बातें ही निराली हैं। जब मैंने कहा कि मैं खोया नहीं बल्कि रह गया था, तब वह बोलीं कि—“बेटा, रह तो हमारी बच्ची गयी थी। तू तो आगे जाकर न मालूम कहाँ खो गये थे।”

संक्षेप में यों है कि थोड़ी देर उनसे और बहस की और जैसे बना उनसे जान छुड़ायी।

इसके बाद खानम से हुज्जत और बहस हुई। उसने मुझे दोषी ठहराया और मैंने उसे। वह इटावा स्टेशन पर उतरी और सेकंड क्लास में बैठी और जब देखा कि मैं गायब हूँ और गाड़ी चल देगी तब उतर पड़ी। और उधर मैं दूसरी तरफ से दौड़कर बैठ गया। मेरा इरादा तो लड़ने का बहुत कुछ था, मगर आगे के लिए रख छोड़ा। मैंने उससे कहा कि तू खो गयी थी और उसने कहा कि तुम खो गये थे। अब निर्णय पाठकों के हाथ में है कि कौन अहमक है। नहीं अहमक तो दोनों हैं। सवाल यह है कि ज्यादा अहमक कौन है और खो कौन गया था, मैं या वह।

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?

एक तो वे लोग हैं, जिनको स्वयं भगवान ने अपने हाथों से बनाया है। जैसे पत्रों के सम्पादक या स्वयं हमारी घरवाली और दूसरे वे लोग हैं जिनको शायद परमात्मा ने ठीके पर बनवाया है और उन ठीकेदारों ने हम मिट्टी के पुतलों को इस तेजी से बना-बनाकर फेंका कि कहीं किसी कहानी लेखक के पुतले पर किसी सेठ जी का पुतला गिरा, किसी वकील पर गामा का पुतला गिरा तो कहानी-लेखक और वकील साहब की नाक कहीं पहुँची, होंठ कहीं पहुँची और जब प्राण डाले गये तो अच्छे खासे बिगड़े हुए खिलौने बन गये। फिर मजा यह कि इस प्रकार का बिगड़ा हुआ रूप देकर भगवान ने

उनके छोटे-से हृदय में अथाह प्रेम भर दिया। अब जो जवानी पर पहुँचते हैं तो हृदय का तो यह हाल कि हर एक को देने को तैयार हैं किन्तु हुलिया ऐसी है कि कोई कानी खुतरी भी प्रेम करने को तैयार नहीं। परिणाम यह है कि कोई लड़की उनपर आशिक नहीं होती। सुनते हैं कि अमुक स्त्री अमुक व्यक्ति पर आशिक हो गई, अमुक लड़की अमुक युवक के साथ भाग गयी, किन्तु कोई नहीं भागती हमारे साथ, और कोई नहीं आशिक होती हम पर। लाचार होकर धोखे फरेब से पत्नी को दूढ़ करते हैं और फिर दिन रात इसी कोशिश में रहते हैं कि कहीं पत्नी के दिल से भी न उतर जायें।

[१]

एक दिन की बात है कि मैं एक मुकदमे की बहस तैयार कर रहा था। एकाएक श्रीमती जी दौड़ी हुई आयीं और मुझसे घबराकर कहा कि जुमियाँ फज्जू खाँ सिपाही के साथ भाग गयी। अब मैं क्या बातऊँ कि इस खबर को सुनते ही मेरे ऊपर क्या बीत गयी। कुछ समय में नहीं आता था कि फज्जू खाँ को भाग्यवान समझूँ या श्रीमती जुमियाँ के चुनाव की प्रशंसा करूँ। पहले यह अच्छा मालूम होता है कि आपको यह बतला दूँ कि यह जुमियाँ थी कौन ?

गेहुआँ रंग, किताबी चेहरा, खड़ी नाक और पतले होंठों-वाली एक पन्द्रह वर्षीया बालिका थी। मैं अकसर देखता कि सामने एक सड़क पर बल खाती, घूमती, बड़े ही चुलबुलेपन से गुनगुनाती अपनी रंग-बिरङ्गी ओढ़नी में एक रंगीन तितली की भाँति हवा में चुटकियाँ सी बजाती चली जा रही है। इसके विपरीत फज्जू खाँ एक पैंतालीस वर्ष के भूत। इससे अधिक मैं उनके सिपाहियाना रूप की न तो प्रशंसा कर

सकता हूँ न करना चाहता हूँ। सहसा मुझे खयाल आया कि देखो तो इस जुमियाँ को। पड़ोस में एक तो हम स्वयं रहते हैं, यद्यपि सुन्दर नहीं हैं पर भूत भी नहीं हैं; इसके अतिरिक्त हमारे अब्दुर अजीज पड़ोसी हैं और एक से एक सुन्दर जवान रहते हैं पर इस अभागी छोकरी ने हम लोगों में से किसी को पूछा तक नहीं। इससे यह मतलब नहीं कि यदि वह कहती तो मैं उसके साथ भाग जाता या किसी तरह भी उसको अपने ऊपर आशिक हो जाने देता। बल्कि मतलब यह है कि उसे ऐसा न करना चाहिए था। यद्यपि हम राजी न होते लेकिन इससे हमें प्रसन्नता अवश्य होती। अब मजा देखिए कि जिस मुकदमे की मैं बहस तैयार कर रहा था वह भी ऐसा ही था। एक महाशय एक अच्छी सूरत-शक्त की छोकरी को ले उड़े और जब पकड़े गये तो मुझे वकील किया। अब मुकदमे की बहस तैयार हो रही थी। हमारे मुताजिम की ओर से यह आपत्ति थी कि हमने लड़की भगायी जरूर पर सच्ची बात यह है कि लड़की स्वयं अपनी खुशी से मुझ पर आशिक होकर और जोर देकर मेरे साथ चल दी। मुताजिम ने अपनी प्रेम कहानी अपने एकवाली बयान में बड़े मनोरंजक ढङ्ग से बयान की थी कि किस प्रकार लड़की इसे मिली, किस तरह वह उन महाशय पर आशिक हो गयी और फिर किस तरह—

कुछ ऐसा ही दोनों तरफ इश्क का असर फैला। और मेरे मोअक्किल महाशय अपनी प्रेमिका को लेकर भाग जाने के लिए बाध्य हुए।

मैं सच कहता हूँ कि मेरे मोअक्किल साहब ने यह विवरण सुनाया और सच-सच हाल सुनाया तो पहिले तो मैंने

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?] [१४५

बड़े गौर से उनकी सूरत देखी, यह देखने को कि वे अधिक सुन्दर हैं या मैं । काला होना पहले तो कोई जुर्म नहीं और यह सत्य है कि सुन्दरता और कुरूपता से यद्यपि उनका सम्बन्ध नहीं है किन्तु जब दूसरे अंग अर्थात् नाक, आँख, होंठ इत्यादि भी विरोध कर रहे हों तो यह मानना पड़ेगा कि कालापन सोने पर सोहागे का काम देता है । अतएव मैंने गौर से अपने मोअक्किल के चेहरे को देखा और कुछ संदिग्ध दृष्टि से देखकर उनसे कहा कि देखो भाई, वकील से तो सच-सच दिल का हाल वयान किया जाता है । तुम सच-सच बताओ । यह सुनकर मोअक्किल महाशय ने मुझे अच्छी तरह समझाकर कहा कि जो घटना बनायी गयी है उसमें तनिक भी सन्देह की जगह नहीं । फिर और भी विस्तार के साथ लड़की के प्रेम की कहानी सुनायी । किस्से पर मैंने विश्वास कर लिया । लड़का से जिरह की तो उससे भी यही अनुमान हुआ कि अवश्य ही लड़की अभियुक्त पर आशिक हुई । घटनाओं ने भी समर्थन किया और वह भी इस तरह कि मुकदमा जीतने की पूरी आशा हो गया । वह सब अब तैयार हो रही थी । यह तो सब कुछ हो गया । लेकिन जिस दिन से यह मुकदमा आया, मैं स्वयं एक चिन्ता में पड़ गया । मुसलिन नहीं था नहीं तो मैं अपना और अभियुक्त का फोटो पेश करके सिद्ध कर देता कि साहब मैं अपने मोअक्किल से हजार दर्ज सुन्दर हूँ । वह अवेड़ है और मैं जवान हूँ । किन्तु सच यह है कि दुर्भाग्य कुछ ऐसा साथ-साथ रहा है और रहेगा कि सारी दुनिया पर, काने-खुतरो पर, लँगड़े-लूलों पर तो एक से एक सुन्दर लड़की आशिक हो जायें और न हों तो हम पर । जब कभी भी इस बात पर विचार किया, अफसोस ही करना

पड़ा। बजाय इसके कि कोई लड़की मुझ पर आशिक होती अपने जीवन का अनुभव दुर्भाग्य से यह रहा है कि सुन्दर और असुन्दर लड़कियों के कटु और हृदय-वेधी व्यंग बाणों का ही निशाना बनना पड़ा। और वह भी ऐसे कि जी ते सदा यही चाहता रहा कि आइने में अपनी सूरत देखकर एक पाँच नित्य लगाये जाय। आप किसी से पूछिए कि क्यों भाई तुम पर कोई आशिक हुआ है तो उत्तर में आप एक से एक मनोरंजक कहानियाँ सुनेंगे। हमने भी देखादेखी इस प्रकार के बिलकुल भूठे किस्से गढ़कर अपने मित्रों को सुनाये हैं। वह बात और थो। किन्तु अब यहाँ मुझे भूठ बोलने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि यदि भूठ लिखूँगा तो आप लोगों का तो कुछ नहीं, कहीं कोई और उस कथा को सच न मान ले कि लेने के देने पड़ जायँ। अतः सच-सच कहूँगा। यह भी सुन लीजिए कि किस तरह इस सच बोलने की आवश्यकता पड़ गयी।

[२]

जुमियाँ के सामने पर जब टीका टिप्पणी हो चुकी तो काम के बारे में श्रीमती जी ने पूछा—“क्या कर रहे हो?”

मैंने हँसकर कहा—“जरा इसे सुनो।” और यह कहकर अभियुक्त की ओर से जो लिखित बयान मैंने पेश किये थे, वह पढ़कर श्रीमती जी को सुनाना शुरू किया। ये बयान सात फुलस्केप आकार के पेज के थे और सम्भवतः एक कहानी लेखक वकील के लिखे होने के कारण उसमें और भी दिल-चस्पी आगयी होगी। श्रीमती जी ने जब गौर से बयान सुना तो कहने लगी—“यह किसी पत्रिका के लिए कहानी लिखी है या सचमुच मुकदमे के बयान हैं?”

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?] [१४७

सारांश यह कि बयान श्रीमती जी ने बड़े ध्यान से सुना । मैं वह बयान सुनाकर श्रीमती जी को गौर से देखने लगा । यह भी मुझे गौर से देखने लगी । मैं अपने मन में क्या सोच रहा था । आप ही अनुमान कीजिए । मैंने सचमुच उनके मन की बात जान ली । मैं इस सोच में था कि श्रीमती जी ने अभियुक्त और उसकी प्रेमिका की शकल सूरत पर बहस शुरू कर दी । यह बहस खतम हो गयी तो मैंने श्रीमती जी को बड़ी चतुरता के साथ समझा दिया कि पुरुषों के लिए सचमुच यह आवश्यक नहीं कि उन पर आशिक होने से पहिले सुन्दर लड़कियाँ यह देखें कि पुरुष सुन्दर है अथवा नहीं ? काना है या खुतरा ? उन्हें तो बस निश्चय करके एकदम आशिक हो जाना चाहिए ।

श्रीमती जी ने यह सब सुनकर अपनी आँखों में एक चमक पैदा करके हँसकर कहा—“एक बात तुमसे पूछें, सच-सच बताओगे ?”

“वह क्या ?”

“पहले वादा करो, कसम खाओ ।”

मैंने तुरत एक मोटी-सी सौगन्ध खायी तो वे बोलीं—
“ऐसे नहीं, हमारी कसम खाकर वचन दो ।”

लाचार हो उनकी भी कसम खायी । वैसे तो न खाता पर उस समय यह कुरेद पड़ गयी थी कि उनका प्रश्न सुना जाये । अतः जब कसम खा ली तो उन्होंने प्रश्न किया—“सच-सच बताना, कभी तुम पर भी कोई लड़की आशिक हुई है ?”

इस प्रश्न ने मुझे कि प दुविधा में डाल दिया होगा इसका आप स्वयं अनुमान कीजिए । आती जीवन संगिनी की कसम खाकर झूठ बोलना असम्भव था । सच-सच कहता हूँ तो

मामला बिगड़ा जाता है। क्योंकि सच बात यह है कि हमारी सदा से यह अभिलाषा रही कि कोई हम पर आशिक हो, पर यह अभिलाषा कभी पूरी न हुई और भाग्य में सुन्दर और असुन्दर लड़कियों के अपने रूप के बारे में कटु-रिमार्क ही सुनते रहे जो अब भी कानों में गूँजते रहते हैं। परन्तु नहीं, मैंने शायद यहाँ भूल की। सच यह है मेरे ऊपर भी तीन लड़कियाँ आशिक हुई हैं। एक तो स्वयं प्रश्न करने वाली जो सिर पकड़कर भाग्य को रो रही हैं। पर इनकी बात ही जाने दीजिए क्योंकि वे आशिक न हों तो करें क्या? वह मजमून है कि खाओ तो बैंगन का भुर्ता और न खाओ तो बैंगन का भुर्ता। पचास दफा गरज हो तो आशिक हो नहीं तो जाने दो। इसलिए उनको छोड़िए।

दूसरी जो आशिक हुई थी उसके बारे में निवेदन है कि उसकी याद मेरे दिल से कभी नहीं मिट सकती। और उस समय तक उसकी याद ताजी रहेगी जब तक कि नटखट बच्चे मचलना और हठ करना बिलकुल ही न छोड़ दें। क्योंकि उसी की हुलिया बताकर बच्चों को डराया जाता।

अब रह गयी तीसरी भाग्यवती लड़की जो मेरे ऊपर आशिक हुई तो दुर्भाग्य से उसका किस्सा भी इस लायक नहीं कि किसी और को या पत्नी को सचमुच सुनाया जाय।

अतएव समय बिताने के लिए मैंने श्रीमती जी से उलटा सवाल कर दिया कि पहिले तुम बताओ कि तुम पर भी कोई, आशिक हुआ है या नहीं?

यह सवाल सुनकर श्रीमती जी को कुछ हँसी भी आयी और कुछ क्रोध भी। उसने बुरा मानने की कोशिश की पर मैंने आड़े हाथों लिया। यह कहकर कि तुम्हें अवश्य बताना पड़ेगा नहीं

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?] [१४६

तो मैं न बताऊँगा । जब मैंने जोर दिया तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मेरे ऊपर कोई क्यों आशिक होने लगा ?

लेकिन मैंने जिरह शुरू कर दी और एक दर्जन भी सवाल न किये होंगे कि श्रीमती जी को कहना पड़ा कि मेरे विवाह से पहले तीन जगह से बात आयी थी । उनमें से दो की तो खैर कोई बात नहीं क्योंकि उनसे इनकार कर दिया गया तो वे मान गये लेकिन उसमें से एक रुपये पैसेवाले बूढ़े महाशय थे जिन्होंने अधिक चेष्टा की । उनको बड़ी सख्ती से जवाब दिया गया और उनकी हजारों की जायदाद को हमारे ससुर महोदय ने बड़ी रुखाई से ठुकरा दिया । किस्सा सुनकर मैंने बुढ़े ही को पकड़ा कि बस वही आशिक था । और सच भी यह है कि बूढ़े लोग जल्द आशिक होते हैं, बल्कि अधिकांश बूढ़ों का यह कायदा है कि इधर पड़ोस में लड़की पैदा हुई और इधर उन्होंने छट्टी में जाकर उसको देखा और आशिक हो गये । फिर ठीक चौदह वर्ष के बाद आप देख लीजिएगा कि बड़े मियाँ धर-धर के विवाह की कोशिश कर रहे हैं ।

जब उस बूढ़ेवाला किस्सा खत्म हो गया तो लाचार होकर मुझे भी अपना किस्सा सुनाना पड़ा ।

[३]

कभी-कभी लोगों को घर से भाग जाना पड़ता है । शिक्षा आदि को छोड़-छाड़कर । इन पंक्तियों का लेखक भी बम्बई में इसी आवश्यक काम से गया हुआ था । घर से भागने-वाले बम्बई को न जाने क्या समझते हैं ? वहाँ पहुँचकर पता चलता है कि घर से भागना भारी मूर्खता है । यह उसी समय की बात है जब मुझे भी पता चल रहा था । अर्थात् होटल की नौकरी से कान पकड़ कर जब निकाले गये थे तो

उसको पन्द्रह दिन हो रहे थे और रुपया जो कुछ भी था वह खत्म होने वाला ही था। शाम को मैं नित्य चौपाटी चला जाया करता था और वहाँ से सीधा मालावार हिल पहुँच जाता था। मालावार हिल एक बड़ा ही सुन्दर बाग है जो एक कृत्रिम पहाड़ी पर स्थित है। यह पहाड़ी कितनी सुन्दर है उसका आप उस समय तक अनुमान नहीं कर सकते जब तक स्वयं न देख ले।

मैंने मालावार हिल पर पहुँचकर देखा कि हर तरफ बसन्त ही बसन्त है। एक से एक सुन्दर, कोमलांगी स्त्रियों का मेल-सा लगा था। मैं भी उन सुन्दरियों के साथ-साथ पहाड़ी पर चला जा रहा था पर मेरा मन मरा हुआ था। ऐसे अवसरों पर किसी साथी का न होना बड़ा अखरता है। मैं भी इस अभाव का बड़े दुख के साथ अनुभव कर रहा था। इसकी चोटी वैसी नहीं है जैसी हिमालय की है बल्कि चोटी पर पहुँचिए तो हरियाली का एक मैदान चारों ओर दिखाई पड़ता है। जगह-जगह अंगरेज, पारसी, मराठी, गुजराती आदि जाति की लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ कुछ दौड़ रही थीं, कुछ खेल रही थीं, कुछ बच्चों के साथ भूला भूल रही थीं। यहाँ सरकार की ओर से भूले पड़े हुए हैं। जगह-जगह दो-दो चार-चार की टोलियाँ हँसी-मजाक कर रही थीं। हमारे जैसे दो-चार अभागे और भी थे जो अलग एक बेंच या घास पर बैठे हुए सुन्दर युवतियों को घूरे जा रहे थे। उनकी यही कोशिश थी कि कोई सुन्दरी उनको देखे और उनपर आशिक हो जाय।

[४]

इधर-उधर घूम-फिर कर मैं अब एकान्त स्थान पर पहुँचा और एक बेंच पर सिर झुकाकर इस तरह गाकिल होकर बैठ

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?] [१५१

गया कि थोड़ी देर के लिए आँखें जो बन्द की तो यह भी खयाल न रहा कि कहा हूँ। मैं इसी तरह बैठा था कि कुछ आहट सी हुई। मैंने सिर उठाकर देखा तो क्या देखता हूँ कि दो पारसी लड़कियाँ आपस में बातें करती मेरी ही तरफ चली आ रही थीं। मेरी बेंच के निकट आकर एक ने मुझसे कहा—“अगर कोई आपत्ति न हो तो हम भी इस बेंच पर बैठ जायें।”

मैं चौकसा पड़ा और बोला—“हाँ, हाँ, बड़े शौक से बैठिए, बल्कि मैं उठा जाता हूँ।”

यह कहता हुआ मैं उठा। मेरा उठना था कि “नहीं” नहीं” कहते हुए बड़ी, शिष्टता से मुझे रोकने को बड़ी और बोली—“आप बैठिए, हम स्वयं चले जायेंगे।” तुरन्त ही दूसरी बोली—“हमने आपको कष्ट दिया, आप बैठिए।” इस पर मैंने भी और आग्रह किया और लखनऊ के लोगों की तरह “पहले आप, वल्लाह पहले आप।” होने लगा। मैं कह रहा था कि आप बैठिए, मैं चला जाता हूँ और वे कह रही थीं आप बैठिए, हम चले जाते हैं। अन्त में बड़ी वाली, जिसकी आयु १८-१९ वर्ष होगी, मेरा हाथ पकड़कर बोली—“अच्छा आप बैठिए, हम भी बैठ जाती हैं।”

मन में तो मैं बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु ऊपर से कहा—“पर शायद मैं आपके एकान्त में बाधक हूँगा।”

“जी नहीं, बल्कि आपकी उपस्थिति हमारे लिए प्रसन्नता की बात होगी। क्या आप हमारी बात-चीत नापसन्द करेंगे?”

मैंने कहा—“जी नहीं हरगिज नहीं।”

सारांश यह कि वे भी बैठ गयीं और मैं भी बैठ गया। इसके बाद उन्होंने मेरा परिचय प्राप्त किया और अपना

परिचय स्वयं दिया। मुझे याद नहीं कि मैंने क्या झूठ सच मिलाया जिसका सार यह था कि मैं यों ही घूमने के लिए बम्बई चला आया हूँ। उनके विषय में ज्ञात हुआ कि बड़ी वाली विधवा है और उसका नाम मिसेज़ लमजी है। छोटी-वाली कुमारी थी और उसका नाम मिस रुस्तम जी था। दोनों बड़ी शिष्ट और सुन्दर थीं। पर लमजी को देखकर इतना अवश्य कहना पड़ता था कि डार्विन की थ्योरी सच जरूर है किन्तु यह भी सच है कि यदि मनुष्य को बन्दर की सन्तान कहा जा सकता है तो कुछ लोग घोड़े की संतान भी सिद्ध किये जा सकते हैं। बड़ी देर तक हम लोग बातें करते रहे और अंत में मैं स्वयं उन दोनों से विदा होकर दूसरी ओर चल दिया।

[५]

साँझ हो रही थी और लोग पहाड़ से उतर रहे थे। मेरा मन पहले ही की तरह उदास था। अतएव भीड़-भाड़ को छोड़कर मैं जान-बूझकर उस तरफ चला जिधर से कोई भी नहीं उतर रहा था। तीन सड़कों से उतरकर मैं चौथी पर पहुँचा और फूलों तथा झाड़ियों के घने मार्ग से होता हुआ बिलकुल एकान्त मार्ग पर पहुँचा। पाँचवी सड़क पर उतरा तो क्या देखता हूँ कि मिसेज़ लमजी एक गमले के पास एक पाँव झुकाये और दूसरा पाँव एक झाड़ी में फँसाये इस तरह खड़ा है कि मुँह हाथ से पकड़े है और चेहरे से कष्ट प्रकट होता है। मैं उसे एकदम से देखकर भिन्न हो गया और वह तुरन्त बोली कि ईश्वर के लिए मेरी मदद कीजिए। मैं तुरन्त उसके पास पहुँचा तो उसने अपना हाथ मेरे कंधे पर रखा और मुझे उस समय यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि न तो उसका किसी चीज़ में पैर अटका है और न कपड़ा अटका है। लेकिन तुरन्त

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?] [१५३

ही उसने लंगड़ाते हुए आगे बढ़ने की चेष्टा की और मानो पीड़ से व्याकुल होकर कहने लगी—“मेरा पैर टूट गया है ।” और इसके बाद ही बड़ी निर्भीकता से अपना दाहिना हाथ मेरे गले में डालकर और मुझ पर लदकर अपना पूरा भार डालते हुए कहा—“कृपा करके जैसे भी हो सके मुझे नीचे तक पहुँचा दीजिए ।”

आप स्वयं सोचें कि मैं कैसे इत्तफा करता जब कि उसने उसी हालत में मेरे साथ लंगड़ाते हुए चलना भी शुरू कर दिया । चार-छः कदम चलने के बाद ही मुझे यह पता लगा कि यह बोकस इस प्रकार घसीटना मेरे बूते का रोग नहीं । परन्तु इस विविध अनुभव पर मैं आससे क्या बताऊँ कि मेरे मन में कैसे लड्डू फूट रहे थे ।

थाड़ी ही देर बाद हम दोनों एक बेंच पर बैठे हुए थे । मेरी जानकारी में एक नयी वृद्धि हो चुकी थी अर्थात् मुझे यह मालूम हो गया कि मिसेज लमजी मुझ पर बुरी तरह आशिक हो चुकी थीं । उन्होंने मुझे बताया नहीं पर मैं समझ गया कि यह बिचारी मेरे प्रेम में पागल हो जायगी यदि मैं इसके स्वर्गीय पति के घर न गया जिसको अब यह स्वयं मालिक है और मुझे भी उसका साझीदार बनाना चाहती है ।

अब ऐसे अवसर पर यह सवाल नहीं कि आप होते तो क्या करते अथवा और कोई होता तो क्या करता, बल्कि यहाँ यह पूछिए कि मैंने क्या किया ? मैंने यह किया कि उसे साथ लेकर नीचे उतरा । चौपाटी पर अजीब बहार थी । पर हमें उससे क्या मतलब । हमने जल्दी से एक टैक्सी ली और उसके घर की ओर चले । एक शानदार बिल्डिंग के सामने उसने मोटर रुकवाया । हम दोनों उतर । उसके पैर का दर्द करीब-

करीब जाता रहा था। तीसरी मंजिल पर पहुँचे। पर उसने एक बन्द कमरे के दरवाजे का ताला हाथ में लेकर कहा—
“अब क्या करूँ ? नौकर ताला लगाकर चला गया।।”

लाचार हो हमको लौटना पड़ा। क्योंकि उसने बतलाया कि नौकर दो घंटे के बाद आवेगा। मैंने पूछा कि अब कहाँ चलेंगी तो उसने कहा—“कुछ चाय और आइसक्रीम खाकर सिनेमा चलिए।”

मुझे भला क्या इनकार हो सकता था। नीचे आकर मैंने फिर टैक्सी को और सीवे उतारो इच्छा के अनुसार उसकी एक सहेली के यहाँ चले। वहाँ से तीन लड़कियाँ और हमारे साथ हो गयीं और सब मिलकर एक होटल में पहुँचे। कुछ खा-पीकर सीधे सिनेमा गये जहाँ मैंने सबके लिए फ़र्स्ट क्लास के टिकट खरीदे और सिनेमा देखा। सिनेमा देखने के बाद सुबह मिलने का वायदा करके हम सब विदा हुए।

अब मैं निवास-स्थान पर पहुँचा और अपनी जेब जो देखी तो पाँच के तले से धरती खिसक गयी। मतलब यह कि मुश्किल से दो ढाई रुपए रह गये।

[६]

दूसरे दिन पहला काम यह किया गया कि कमीज़ के बटन ५०) में बेंचे नहीं बल्कि ३५) में रेहन रख दिये। यह क्यों। केवल इसलिए के प्रेम से पहली मुठभेड़ है, ज़रा अच्छी तरह निभाना चाहिए। दुर्भाग्य या सौभाग्य से यह समझे हुए थे कि बम्बई के सेठ की विधवा से विवाह करेंगे और सेठ के धन के मालिक बनेंगे। ३५) जेब में डालकर चलने की तैयारी की। आईने में देख-देखकर वह बनाव सिंगार किया कि आपसे क्या बतावें। बड़ी देर तक आईने में अपनी सूरत

क्या कभी आप पर कोई आशिक हुआ है ?] [१५५

देखते रहे । इधर से देखा, उधर से देखा और हर तरह अपने को सुन्दर पाया । मन ने कहा कि भैया सचमुच तू बहुत सुन्दर है और ये जो सुन्दर और चंचल छोकरियाँ, जिनके दिमाग अंगरेजी शिक्षा ने खराब कर दिये हैं तुझको फटीचर, पिनकी, तिनका, सींकिया, लंगूर आदि की उपाधि दिया करती हैं, वे वास्तव में झूठ मारती हैं । अब तो तुम्हारे ऊपर आशिक होने का सिलसिला शुरू हुआ है और यदि तुम कुछ दिनों और बम्बई में रह गये तो ताज्जुब नहीं जो बम्बई की सुन्दरियाँ प्रसाद समझ कर तुम्हें बाँट लें ।

मिसेज लमजी के घर पर जो मैं पहुँचा तो उसको सड़क के किनारे पर अपनी प्रतीक्षा करते हुए पाया । मैं उतरने लगा तो वह मुस्कराती हुई स्वयं मोटर पर चढ़ आयी और शोकर से कहा कि रानीबाग चलो । शोकर ने मोटर को पूरे वेग से छोड़ दिया और हम दोनों बातों में लग गये । वह-वह योजनायें बनायीं और वह-वह सुखद स्वप्न मैंने देखे कि क्या बताऊँ । मिसेज लमजी का पवित्र प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था ।

रानीबाग गये और वहाँ खूब घूमे । वहाँ से लौटे तो वह अपनी सखियों के घर ले गयी और शाम तक वही प्रोग्राम रहा जो गत दिन रहा था और इस प्रोग्राम में बाईस रुपये खर्च हो गये और अब मुझे चिन्ता हुई कि रुपये का कुछ प्रबन्ध करना चाहिए । बम्बई में मेरे केवल एक मित्र थे । बड़े हँसमुख और सज्जन । ये महाशय अवध के रहनेवाले थे और रेलवे में नौकर थे । अतएव मैं स्टेशन पर पहुँचा तो उनको रेस्टरूम में यार-दोस्तों के साथ गप-शप करते हुए पाया । तुरन्त उनको साथ लेकर पीछेवाले कमरे में एकान्त में लेजाकर अपनी रामकहानी शुरू की । बहुत थोड़ी-सी सुनायी

थी कि वे हँसकर बोले—“फिर आगे वह लँगड़ाते हुए भी तुम्हें मिली या नहीं और उसको तुमने चलने में मदद दी या नहीं।”

मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि मैंने इनसे बताया भी नहीं और इन्हें मालूम हो गया। मैंने पूछा—“तुमको कैसे मालूम हुआ?”

इसके उत्तर में उन्होंने एक जोरों का ठहाका लगाया और तेजी से उठकर बड़े कमरे में पहुँचे और मेरे रोकने पर भी चिल्लाकर बोले—“अरे म्यां फारुक, कुछ नई सुनो।”

फारुक हँसकर बोले—“क्यों भई, क्या मामला है?”

उन्होंने मेरी पीठ पर जोर से हाथ मारकर एक ठहाका लगाकर कहा—“इन पर भी मालावार हिलवाली ने उल्लू को लकड़ी फेर दी।”

उनका यह कहना था कि कमरे के सब लोग हँसते-हँसते लोट गये। सब मुझसे चिपट पड़े। कोई पूछता था—“कितने रुपये खो बैठे?” कोई कहता था—इनका तो वही हाल हुआ कि मुकलिसी में आटा गीला। कोई कहने लगा—यार मेरे, तुमने अपनी सूरत तो देखी होती आईने में कि कोई इस पर आशिक हो भी सकता है या नहीं। कोई कहने लगा—“इनके कान में शैतान यह कह गया कि भैया तुमसे ज्यादा कोई सुन्दर नहीं।” इत्यादि-इत्यादि। इसके बाद यह मालूम हुआ कि उस चालाक स्त्री का पेशा यही है कि किसी मूर्ख पर नित्य आशिक होती है और अपना उल्लू सीधा करती है।

यही वह कहानी है जिसके आधार पर हम भी कह सकते हैं कि हमारे ऊपर एक लड़की आशिक हुई है। अब यह और बात है कि स्वयं हमने ही इस प्रेम को बढ़ने से रोक दिया और फिर जितने दिन बम्बई में रहे, कभी उस तरफ का रुख नहीं किया।

